योगविद्या

वर्ष 2 अंक 5
मई 2013
सदस्यता डाकखर्च – रु 50

स्वर्ण जयन्ती

बिहार योग विद्यालय
के 50 वर्ष

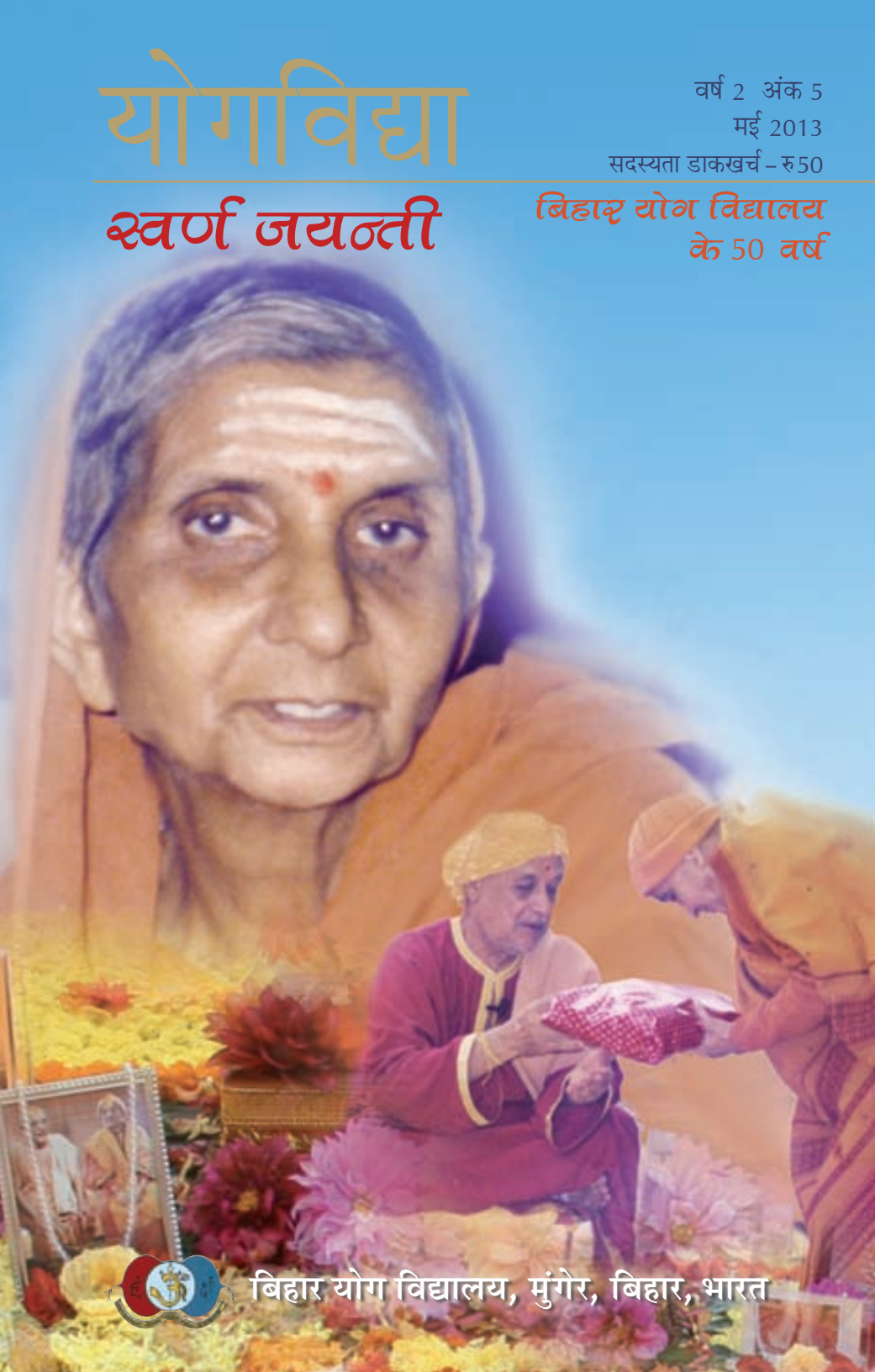

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2013

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कवर फोटो : स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती एवं स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

अन्दर के रंगीन फोटो : 1: राजनाँदगाँव 1957; 2: गुरु पूर्णिमा, जबलपुर 1981; 3&6: सीता कल्याणम्, रिखियापीठ 2007; 4: गंगा दर्शन 1997; 5: गंगा दर्शन 1999; 7: श्री लक्ष्मीनारायण महायज्ञ, संन्यास पीठ, मुंगेर 2011; 8: षोडशी पूजा, सत्यम् उद्यान, मुंगेर 2013;

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

संत कौन?

संत ही इस संसार के सच्चे हितैषी हैं। भारत माता अपने साधुओं और संतों के कारण ही इतनी धनी है। यदि आप किसी व्यक्ति में करुणा और विनय पाते हैं तो जानिए कि वह संत है। उसका दिल दूसरों की पीड़ा को देखकर पिघल जाएगा। संत भले ही गीता या अन्य शास्त्रों पर प्रेरणास्पद व्याख्यान न दे पाए, पर उसके व्यक्तित्व से एक ऐसी मधुर सुरभि नि:सृत होगी जो आपको उसकी ओर अवश्य आकृष्ट करेगी। उसके सान्निध्य में आकर आप गहरी शांति और आत्मिक आनंद का अनुभव करेंगे।

संत की उपस्थिति में आप की सारी आशंकाएँ और चिंताएँ मिट जाएँगी। उसके दर्शन मात्र से आप उन्नत और प्रफुल्लित अनुभव करेंगे। उसकी वाणी से आपको प्रेरणा मिलेगी। उसकी संगति में आपकी समूची प्रकृति ही बदल जाएगी और आप अपने जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ करेंगे। संतों की ऐसी शक्ति है! दया और विनम्रता की ऐसी महिमा है!

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 2 अंक 5 • मई 2013
(प्रकाशन का 51 वाँ वर्ष)

विषय सूची

योगविद्या का यह विशेषांक स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती को समर्पित है, जो 12 फरवरी, 2013 के मध्याह्न 12 बजे समाधि में लीन हो गयीं। इस अंक में अम्माजी की रचनाओं एवं सत्संगों तथा उनके प्रियजनों एवं प्रशंसकों द्वारा अभिव्यक्त श्रद्धांजलियों का संकलन है।

2 सत्यम् का प्रथम प्रबोधन
3 गुरु और परमगुरु
4 शिवानन्दांजलि
5 एक महान् विभूति की स्मृति में
10 गंगोत्री में कृपानुभूति
13 जय-जय-जय सत्यम्
14 बसन्ती दीदी की दीक्षा
16 अम्माजी की स्मृति में
25 गुरु का अनमोल आशीर्वाद
26 माँ के लिए निर्देश
28 प्रकाश का अवतरण
29 स्वर्णिम स्मृतियाँ
31 मेरा स्वप्न पूरा हुआ
34 श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
36 दो नन्हें पौधे
37 महान् गुरु की स्मृति में
41 माँ की डोली
42 सजल नयनों ने दी अम्माजी को विदाई
44 मातृस्वरूपा देवी

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

सत्यम् का प्रथम प्रबोधन

शिवानन्दाश्रम, ऋषिकेश से श्री स्वामी सत्यानन्द जी का स्वामी धर्मशक्ति के नाम पहला पत्र

शिवानन्द नगर,
ऋषिकेश
11-12-1955

ॐ नमो नारायणाय!

आप भगवती नारायणी की शक्ति हैं। अज्ञान और मोह के कारण आपका स्वरूप ढँका हुआ है। भगवती कथा उस आवरण को हटा देगी। जब आप ही ईश्वर-शक्ति हैं तो फिर देर क्यों? थोड़ा पर्दा हटाइये, मन से माया के अन्धकार को दूर भगाइये। तन में राम, मन में राम, राम ही राम को साकार कीजिये। ईश्वर-दर्शन आपको अपने अन्दर ही होगा।

यह सच है कि योगी की विचित्र रहस्यपूर्ण वेशभूषा से संसार भरा हुआ है। क्षीणकाय, अर्द्धनग्न, जटाजूट युक्त, विभूति-सम्मित, यह योगी का सच्चा रूप नहीं है। अशिक्षा-पीड़ित-भारत में फैली हुई इस अन्ध-परम्परा का खण्डन और विनाश होना ही चाहिये।

आप लोग अपना कर्त्तव्य करते रहें। जो पुस्तकें आश्रम से ले गये हैं, तथा पत्र-पत्रिका मंगाते हैं उन्हें पढ़ते रहिये, अपने मित्रों को भी पढ़ाइये। आसन, जप, ध्यान, जो भी करते हो, नियम से करते रहना। पूज्य गुरुदेव की पुस्तकें स्वयं गुरु हैं, समयानुसार आपके अन्दर प्रेरणा मिलेगी, गुरु स्वयं आयेंगे, लगन सच्ची होनी चाहिये।

राजनाँदगाँव में राम नाम की, कृष्ण नाम की गंगा जरूर प्रवाहित होगी, यही सत्यम् की शुभ-कामना है। पूज्य गुरुदेव का आशीर्वाद आप लोगों के साथ है।

–सत्यम्

गुरु और परमगुरु

स्वामी धर्मशक्ति के संस्मरण

ऋषिकेश में अप्रैल 1953 में होने वाले 'विश्वधर्म सम्मेलन' में भाग लेने सत्यव्रत जी मुझे साथ ले गये थे। भूमण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्द जी एवं उनके शिष्य समुदाय को देखकर हम बहुत प्रभावित हुए। तीन दिन के संत-समागम ने हमारे जीवन की धारा ही बदल दी। हमने स्वामी शिवानन्द को जगद्गुरु के रूप में देखा और स्वामी सत्यानन्द को अपने जन्म-जन्म के प्रियजन के रूप में। चार दिन बाद वापस आये, अपने को वहीं खोकर। वहाँ से बहुत पुस्तकें-पत्रिकाएँ लाये थे, उन्हीं में खोये रहते। गुरुदेव से पत्र-व्यवहार भी चलने लगा।

मई 1957 में स्वामी सत्यानन्द जी के साथ हमारा गंगोत्री यात्रा का कार्यक्रम बना। गंगोत्री जाते समय सत्यव्रत जी को स्वामी शिवानन्द जी से मंत्र दीक्षा लेनी है, यह बात पहले से तय हो चुकी थी। सबने कहा मुझे भी साथ में मंत्र ले लेना चाहिए। गुरुवार 23 तारीख की सुबह गुरुदेव शिवानन्दजी की कुटिया में सब इकट्ठे हुए थे। गुरुदेव के सामने सत्यव्रत जी के साथ मैं भी बैठी थी। मेरी सखी, शिवांजलि भी चाहती थी कि दोनों मंत्र लें। उसने कह ही दिया, 'स्वामीजी, बसन्ती को भी मंत्र दीजिए।' गुरु बनाने के मामले में मैं हमेशा से विद्रोहिणी रही हूँ, पर इस समय मेरा भी मन डगमगाने लगा। आँखें बंद कर मन ही मन कहा– *'नाथ बता दो किन चरणों में रखना है यह जीवन अनमोल।'* गुरुदेव ने मेरी तरफ देखा, उसी समय मैंने भी सिर उठाकर देखा... लगा कि सामने स्वामी शिवानन्द जी नहीं, स्वामी सत्यानन्द जी बैठे हैं! मन ने उन्हें ही अपना इष्ट-गुरु मान लिया। मैं देखती ही रही। मुझे मौन देख कर स्वामी शिवानन्द जी मेरी तरफ देखते रहे, अचानक उनकी आँखें चमक उठीं। फिर हँस कर बोले, 'इन्हें तो समय आने पर गुरु मिलेगा ही जी, जय हो, प्रभु का आशीर्वाद है। इनके गुरु इनके घर आयेंगे और ये अपने गुरु के साथ बहुत काम करेंगी।' तब मुझे दिखा कि अब तो स्वामी शिवानन्द जी सामने बैठे हैं! उनके चरणों में झुक गयी, कुछ निर्णय लेने की क्षमता नहीं रही।

उस समय तो सत्यव्रत जी चुप रहे, बाद में नाराज भी हुए, 'तुमने जगद्गुरु सदृश शिवानन्द जी के सामने यह क्या ढिठाई की, तुम्हारे मन में ऐसा क्यों हुआ?' मैंने कहा, 'बड़े स्वामीजी पूज्य हैं, पूज्य ही रहेंगे, पर ये स्वामीजी मेरे पूज्य हैं और प्रिय भी। मैं अपना अधिकार इनसे ही लूँगी।' इस पर स्वामी सत्यानन्द जी ने कहा, 'मैं कभी गुरु नहीं बनूँगा, गुरु सिर्फ स्वामीजी ही हो सकते हैं। मैं तो बस इसी तरह घुमक्कड़ी करता रहूँगा। दस-बारह वर्ष परिव्राजक जीवन में रह कर, फिर गंगोत्री या हिमालय की किसी गुफा में समाधि लगा लूँगा।' मैं चुप रही। मन में सोचा अब देखें विधि का विधान कैसे बनता है। राम जी ही जानें!

शिवानन्दांजलि

'योग-वेदान्त' के सितम्बर, 1957 अंक में छपे स्वामी धर्मशक्ति के हार्दिक उद्‌गार

आठ सितम्बर के
पावन-पुनीत औ' अपार्थिव दिवस पर,
माँ गंगा के वरद् पुत्र
जगत्-पिता के चरणों पर–
तथा
कोटि-कोटि कण्ठों की संगीत-सुरभि
काम-क्रोध, मद-मोह औ'
घृणा-लिप्सामय विश्व के
परम तीर्थ–
प्रेम-शान्ति के,
ज्योति-ज्ञान के
दिव्य-पुरोहित,
दिव्य-हृदय संन्यासी
के तीर्थ स्वरूप चरण-कमलों पर
श्रद्धा युक्त प्रणाम,
नीराजना, आराधना, पद वंदना!
परम कृपामय!
उर के हैं उद्‌गार यही,
कि सत्य-धर्म की
ज्ञान-भक्ति की,
अनहत गंगा
निरंतर प्रवाहित होती रहे
आपके गोमुख, आनन्द कुटीर से।
मेरे स्वामी!
इस जग को नित्य निरंतर
द्वारका का चिर तीर्थ बनाओ
और
हम सब, भूले-भटके
पथ हटे पथिक
तुम्हारे आचरण-चरणों पर नित्य पहुँच कर
अपनी मथुरा की संकीर्ण गली को
चौड़ी सुन्दर
प्रशस्त मनोहर बनावें।
देवता!
मेरे स्वामीजी का जन्मदिवस
सोने का हो,
रातें इनकी चाँदी की हों!
उनके श्रीमुख की पवित्र गिरा
वेद वाक्य की अमर सुधा हो;
और
शिवानन्द सूर्य के
वर्चस्व तेज से
विश्व-पटल का कोना-कोना
अभिनव, ज्योतित
प्रतिपल पावन
देवभूमि का मण्डप होवे!
साधुवाद!
अनेक जयजयकार,
कोटि-कोटि कण्ठों के संगीतों से
'जय शिवानन्द, जय जय शिवानन्द'

एक महान् विभूति की स्मृति में

श्रीमती रत्ना ब्यौहार, रायपुर (स्वामी धर्मशक्ति की छोटी बहन)

स्वामी धर्मशक्ति, जिन्हें हम सब श्रद्धा व प्रेम से अम्माजी कहते हैं, का जन्म मध्य-प्रदेश (अब छत्तीसगढ़) के राजनाँदगाँव जिले के सहसपुर लोहारा में 19 मई, 1924 (बुद्ध पूर्णिमा) को प्रात:कालीन बेला में हुआ था। अम्माजी भाई-बहनों में सबसे बड़ी थीं। इनके पूर्वाश्रम का नाम बसंती था। पिता श्री गोवर्धन लाल श्रीवास्तव छुईखदान में वकालत करते थे, वहीं इनका बचपन बीता।

अम्माजी शुरू से ही एक मेधावी बालिका थीं। बचपन से ही इनका स्वभाव अत्यन्त सात्त्विक व प्रेमपूर्ण था। सबके प्रति संवेदनशील थीं। अध्यात्म के प्रति भी इनका बचपन से ही गहन रुझान था। इनकी शिक्षा किसी स्कूल में नहीं हुई, सारा अध्ययन घर पर ही हुआ। साहित्यिक संस्कार इन्हें पिता से विरासत में मिले। इनके पिता स्वतंत्रता सेनानी थे। राष्ट्रीय चेतना जागरण की प्रेरक कविताएँ लिखते थे। अम्माजी अपने पिता के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थीं, इनमें भी अपने पिता की तरह दृढ़ता, धैर्य, साहस और संकल्प कूट-कूट कर भरा था। बचपन से ही ये रामभक्त व रामायण प्रेमी थीं, और इनका यही गुण इनके विवाह का कारण बना।

अम्माजी के ससुर, श्री धानूलाल श्रीवास्तव धारिया के तहसीलदार थे। उनका इनके पिता से मित्रवत् सम्बन्ध था, और वे इनके घर आया-जाया करते थे। वहीं जब उन्होंने इस बालिका के उच्च संस्कार और सात्त्विक गुणों को देखा, तब फौरन उन्होंने इन्हें अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकारा और अपने बेटे श्री सत्यव्रत जी से इनका विवाह तय कर दिया। अम्माजी छोटी उम्र में ही अपने पति के घर आ गईं। संयोग से इनका पति-गृह भी मायके के समान था। सत्यव्रत जी भी संस्कारी, सौम्य, कर्त्तव्यनिष्ठ और प्रतिभाशाली व्यक्ति थे।

श्री सत्यव्रत जी का जन्म 26 जून, 1914 को छुईखदान में हुआ था। चार भाइयों में तीसरे नम्बर की संतान थे। एक छोटी बहन थी। इनकी शिक्षा-दीक्षा राजनाँदगाँव व जबलपुर के रॉबर्टसन कॉलेज में हुई थी। शिक्षा समाप्त कर वे बैकुण्ठपुर के राजा के यहाँ कार्यरत हुए। राजा उनके काम व स्वभाव से बहुत प्रसन्न और प्रभावित थे। लेकिन किसी परिस्थितिवश इन्हें वहाँ का काम छोड़ना पड़ा। तत्पश्चात् वे राजनाँदगाँव की बी.एन.सी. मिल में कार्य करने लगे।

गुरु से मिलन

अम्माजी एवं सत्यव्रत जी ने अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों को कुशलतापूर्वक निभाया। समय बीतता गया, ईश्वर ने इन्हें सब कुछ दिया लेकिन वे संतान-सुख से वंचित रहे। इसमें भी विधि का विधान था, और वह विधान था चार पीढ़ियों पूर्व की गई एक भविष्यवाणी। अम्माजी के परिवार में किसी विशेष अवसर पर एक पण्डित द्वारा बताया गया था कि आपकी चौथी पीढ़ी में बेटी के यहाँ एक अवतारी अंश का जन्म होगा। अब चूँकि अम्माजी उस परिवार में चौथी पीढ़ी में आईं, विडम्बना या फिर संयोग कहिए कि इनकी जन्म-कुण्डली में भी ऐसे ही योग थे। संतान तो होगी, और महान् होगी, लेकिन किसी संत के आशीर्वाद से। ऐसी स्थिति में सामान्य रूप से संतान-सुख कैसे मिलता? इन्तजार होता गया, परिस्थितियाँ अनुकूल होती गईं।

समय आया, सत्यव्रत जी अपने ऑफिस के कार्य से नागपुर गए थे। वहाँ इनकी मुलाकात एक दक्षिण भारतीय सज्जन से हुई, जो स्वामी शिवानन्द जी के शिष्य थे। यह अप्रैल 1953 की बात है। बातों-बातों में उक्त सज्जन ने सत्यव्रत जी को शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश आने का निमंत्रण दिया। सत्यव्रत जी राजनाँदगाँव आए, मिल से छुट्टी ली, और अम्माजी को लेकर नागपुर के उस व्यक्ति के साथ ऋषिकेश आए। वहाँ इनका परिचय स्वामी शिवानन्द जी से हुआ। शॉर्टहैण्ड जानने के कारण ये सम्मेलन में स्वामी शिवानन्द जी के प्रवचन लिखते और टाइप करके उन्हें दे देते।

शिवानन्द आश्रम में ही इनका प्रथम परिचय स्वामी सत्यानन्द जी से हुआ। दोनों में एक-दूसरे के प्रति आत्मिक आकर्षण हुआ। स्वामी शिवानन्द जी के करीब भी वे आ ही चुके थे। कुछ दिन ऋषिकेश में रहकर वापस आ गए। आने के बाद मिल से सालाना छुट्टी मिली। उस छुट्टी में वे अम्माजी के साथ पुन: ऋषिकेश पहुँच गए। वहाँ स्वामी शिवानन्द जी से दीक्षा का कार्यक्रम तय किया। पति-पत्नी साथ थे, लेकिन अम्माजी का मन नहीं माना, तब सत्यव्रत जी ने अकेले दीक्षा ली। वहीं स्वामी शिवानन्द जी ने भविष्यवाणी की थी– 'इनके गुरु इनके घर आकर दीक्षा देंगे।'

श्री स्वामीजी का राजनाँदगाँव में पदार्पण

राजनाँदगाँव में हर वर्ष गणेशोत्सव मनाया जाता था। स्थानीय लोगों ने सत्यव्रत जी से कहा कि आप ऋषिकेश जाते हैं, किसी संन्यासी को कार्यक्रम के लिए बुलाइये। सत्यव्रत जी का शिवानन्द जी से पत्र-व्यवहार होता रहता था, इन्होंने उनसे किसी को भेजने का आग्रह किया। तब जवाब आया कि वहाँ केवल सत्यानन्द जी ही हिन्दी भाषी हैं, लेकिन उन पर आश्रम का बहुत कार्यभार है। अत: जब वे परिव्राजक होंगे तभी आ पाएँगे।

मई 1956 में सत्यव्रत जी को सत्यानन्द जी का पत्र आया कि अब वे आश्रम छोड़ चुके हैं। अब कहाँ, कैसे आना है, विस्तार से लिखिए, सुविधा होते ही हम आ जाएँगे। सत्यव्रत जी सब कुछ समझ गए। घर आए, अम्माजी से सलाह ली, पोस्ट ऑफिस गए और टिकट के लिए मनीआर्डर कर दिया। जून 1956 में प्रथम बार सत्यानन्द जी का नगरागमन हुआ, और इनका घर स्वामीजी का निवास स्थान बना। यहीं से गुरु-शिष्य और गुरु-भाई में जो घनिष्ठ सम्बन्ध बना, वह उम्रभर निभा।

स्वामी सत्यानन्द जी अक्सर कहा भी करते थे कि तुम दोनों मेरे योग-रथ के दो पहिए हो; तुम्हें ही मेरा कार्य करना है, क्योंकि मैं तो यहाँ-वहाँ घूमूँगा, मेरा स्थाई पता तुम्हारा घर होगा। स्वामीजी के कार्यक्रमों का आयोजन सत्यव्रत जी करते थे। समीपस्थ ग्राम में वे चातुर्मास बिताते थे। इसी दरम्यान अम्माजी का रुझान हुआ कि वे उनसे दीक्षा लें। सत्यानन्द जी कह चुके थे कि मैं गुरु नहीं बनूँगा। भावी शिष्य व गुरु में टकराहट होने लगी। अम्माजी अपने गुरु से झगड़ा भी करती थीं।

अन्तत: भावी शिष्य का दृढ़ संकल्प रंग लाया। सत्यानन्द जी के मन में दीक्षा देने की प्रेरणा हुई। एक दिन पति-पत्नी सत्यानन्द जी से मिलने पहुँचे तो उन्होंने अम्माजी से कहा, 'मैं तुम्हारे घर आऊँगा। तुम सबको निमंत्रण दो कि तुम्हारा नया जन्म होने वाला है, सब को आना है।' इस प्रकार निश्चित समय पर स्वामीजी पधारे। सब लोग बैठे थे। वहीं सबके सामने उन्होंने अम्माजी को राम मंत्र की दीक्षा दी और सबसे कहा कि तुम्हारी बसंती दीदी आज से धर्मशक्ति हो गईं हैं। वे सत्यव्रत जी से कहते थे कि तुम मेरे सत्य के व्रत हो इसलिए तुम्हारा नाम सत्यव्रतानन्द है और ये मेरे धर्म की शक्ति हैं, इसीलिए इनका नाम धर्मशक्ति है।

गुरु-कृपा

समय बीतता गया। एक दिन बातों ही बातों में सत्यव्रत जी ने सत्यानन्द जी से कहा कि धर्मशक्ति को आशीर्वाद दीजिए। तब परमहंस जी दोनों को लेकर ऋषिकेश गए। वहाँ स्वामी शिवानन्द जी से आशीर्वाद लेकर निकल पड़े माँ गंगा की शरण में, अपने मानस पुत्र को लेने। समय आ चुका था। चार पीढ़ी पूर्व की गई विज्ञ पंडित की भविष्यवाणी साकार रूप ले रही थी। माँ गंगा का आशीर्वाद मिला। धर्मशक्ति एवं सत्यव्रत माध्यम बने, गुरु का संकल्प पूर्ण हुआ। 14 फरवरी, 1960 की सुबह

आसमान में चमकता भोर का तारा धरती पर उतर आया। विश्व को निरंजन के रूप में एक देदीप्यमान् सितारा मिला। जो माँ किसी समय एक बच्चे के लिए आग्रही थी, गुरु ने उसे एक बच्चे के साथ हजारों-हजार की माँ बना दिया।

माँ के सान्निध्य में बच्चा बढ़ने लगा। इधर गुरु कार्य भी गतिशील होने लगा। गुरु के आदेश से राजनाँदगाँव में प्रेस का शुभारम्भ हुआ। प्रथम बार विश्व को योगविद्या और योगा पत्रिका का परिचय मिला। सत्यानन्द जी द्वारा जो बीज बोया गया, विश्व के हितार्थ जो उनका संकल्प था, उसे सत्यव्रत जी और धर्मशक्ति ने पूर्ण समर्पण के साथ सहयोग प्रदान किया।

बाद में लोग योग आंदोलन से जुड़ते गए और कारवाँ बढ़ता गया। अब समय आ गया था उस संकल्प के पूर्ण होने का, जिस हेतु निरंजन जी इस धरा पर आए थे। ऐसे वक्त जब एक बच्चे को अपनी माँ की सबसे ज्यादा जरूरत होती है, उसे आँचल की छाँव चाहिए होती है, महान् माता ने अपने कलेजे के टुकड़े को उस छोटी उम्र में गुरु कार्य हेतु संन्यास के निष्ठुर मार्ग पर चलने के लिए पूर्ण समर्पित कर दिया। जिस त्याग, समर्पण और बलिदान के बारे में आज तक इतिहास के पन्नों में ही पढ़े थे, वर्तमान में हमने अपने नेत्रों से देखा।

जब बाल योगी निरंजन गुरु कार्य की पताका विदेशों में फहरा रहे थे, निष्ठुर काल यहाँ घात लगाए बैठा था। 31 दिसम्बर सन् 1971 का वह मनहूस दिन आया

जब आश्रम के कार्य से लौटते समय सत्यव्रत जी एक सड़क दुर्घटना में हम सबको छोड़कर इस दुनिया से चले गए। पति की मौत का आघात, एकाकी महिला, गुरु के कार्य का दायित्व। फिर भी उसे बड़े धैर्य, साहस व संयम से वैसे ही निभाया जैसा सत्यव्रत जी के समय था। योग विद्या और योगा का कार्य पहले सत्यव्रत जी के साथ मिलकर सम्भालती थीं, उनके देहावसान के बाद अम्माजी ने वह जिम्मेदारी स्वयं उठा ली। जब तक वे राजनाँदगाँव में रहीं, इस कार्य को अपने कुशल प्रबंधन से सुचारू रूप से संचालित किया। गुरु का सम्बल मिला, आगे बढ़ती गईं। सन् 1985 में गुरु का आदेश हुआ कि अब सब समेट कर मुंगेर आ जाओ। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर आश्रम को अपना स्थाई निवास बना लिया।

आश्रम में मातृस्वरूपा भूमिका

अब अम्माजी का अलग जीवन, अलग व्यक्तित्व था। राजनाँदगाँव की दीदी यहाँ सब की अम्माजी बन गईं। वह वात्सल्य, दुलार और स्नेह, जिस पर एक संतान का हक होता है, उसे सब पर मुक्तहस्त बरसाने लगीं। इस शीतल छाया में हर किसी को प्रेम, शान्ति, आनन्द; जो चाहा उसे मिला। अम्माजी के कारण आश्रम कई लोगों के लिए एक घर बन गया, जहाँ उन्हें अपनापन, प्रेम, सहानुभूति सब मिलती थी। दिल से आशीर्वाद मिलता था। उनके सान्निध्य में तृप्ति मिलती थी। अम्माजी सब का कुशल-क्षेम पूछती थीं। उनकी स्मरणशक्ति गजब की थी। सालों पुरानी बातें इस तरह बतातीं थीं, मानो कल की ही घटना हो, और वह कालखण्ड जीवन्त हो उठता था।

समय अपनी गति से आगे बढ़ रहा था। आश्रम के कार्यों में अम्माजी की सक्रियता बरकरार रही। जहाँ जैसी जरूरत हो, वे सदा उपस्थित रहती थीं। जिसे जैसी आवश्यकता हो, वे त्वरित मदद पर आती थीं। सबको सदा सहयोग प्रदान करती थीं। जब से अम्माजी मुंगेर आईं तब से परमहंस जी ने उन्हें और भी जिम्मेदारियाँ दीं, जिन्हें उन्होंने कुशलतापूर्वक निभाया। पंचदशनाम अलखबाड़ा की अध्यक्षा एवं अंतर्राष्ट्रीय योग मित्र मंडल की सचिव के रूप में उन्होंने गुरु कार्य को निरंतर आगे बढ़ाया।

काल चक्र घूमता रहा। प्रकृति का नियम है, जिसे पूर्ण होना था। अब जाने की बेला पास आ रही थी, पर जाएँ तो कैसे? प्रकृति ने उनके लिए अवसर चुना, एक उत्सव – मदनोत्सव, वसंतोत्सव, उल्लास पर्व। नियति की रचना, जाने-अनजाने सैकड़ों लोगों का हुजूम विदा देने खड़ा था। जिनकी आशा नहीं थी वे भी मौजूद थे। साक्षात् देवी माँ उपस्थित थीं, गुरु का अप्रत्यक्ष सान्निध्य था, समय अनुकूल था, एक भरा-पूरा परिवार था। माँ धर्मशक्ति अपने वसंती नाम को वसंतोत्सव पर सार्थक कर गईं। चौबीस घंटे बाद उन्हें भू-समाधि दी गई। शरीर मक्खन की तरह स्निग्ध व जीवन्त था। आज भी हम आश्रम में जहाँ भी रहें, उनकी उपस्थिति का आभास होता है। ऐसी प्रेममयी माँ को हमारा कोटि-कोटि नमन।

गंगोत्री में कृपानुभूति

स्वामी धर्मशक्ति के संस्मरण

महान् संत के सान्निध्य में हँसते, खेलते, बच्चों-से प्रश्न करते, उत्सुकता से पूछते, पहाड़-पर्वत-पगोडे, नदी-झरने, गर्म पानी के कुंड और ग्लेशियर पार करते 80 मील चल कर हम माँ गंगोत्री के आँगन में पहुँचे। जैसे माँ की उँगली पकड़कर बच्चा पूछते चलता है, यह क्या है, वह क्या है, इसी तरह हम भी स्वामी सत्यम् के सहारे गंगोत्री पहुँच ही गये। उस पवित्र भूमि में पहुँचकर हमें विशेष अनुभूति हुई।

धर्मशाला में सामान रखकर माँ गंगा के दर्शन को गये। जल तो छूने पर लगता था जैसे दिसम्बर-जनवरी माह में बर्फ हाथ में रख ली हो। हाथ, पैर और मुँह ही किसी तरह धो पाए। स्वामी सत्यम् ही वहाँ पर नहाये...। फिर गंगा माँ के मंदिर गये। भजन-कीर्तन हुआ, स्वामी सत्यम् माता की महिमा बताते रहे, काफी देर तक सत्संग चला, सभी यात्री बैठे रह गये। जब बाहर आये तो मेरा जूता गायब था। परेशान होकर कहा, 'मैंने तो यहीं पर रखा था, कोई ले गया मेरा जूता...'।

स्वामी सत्यम् ने कहा, 'शान्त रहो, जूता जाना तो अच्छी बात है। सोचो कि जूता माँ के दरवाजे से कोई ले गया तो किसी जरूरतमंद ने ही लिया होगा। 80 मील पैदल

यात्रा करके तीर्थलाभ लेने वाला जूते की चोरी करेगा, तो मतलब है कि उसके पास जूता नहीं है, पैरों में तकलीफ हुई होगी, पहनकर उसके पैरों को आराम मिलेगा, सोच कर खुश होना चाहिए। तुम्हारे पास तो वैसा ही जूता और है, धर्मशाला तक चलकर अनुभव भी करो, और कल आकर माँ से प्रार्थना करना कि वर्ष में 2-4 बार जूते की चोरी जरूर हो, और तुम्हें अनजाने पुण्य मिलते रहें।'

ऐसा लगा कि आकाशवाणी सुन रही हूँ। कमरे में आकर भजन-प्रवचन सुनते रहे। हम अपने विचारों में खोये रहे। बलिहारी है इन शब्दों की, इसके बाद हर वर्ष 3-4 बार मेरी व सत्यव्रत जी की चप्पल या जूता सम्मेलन व सत्संग में ही खो जाता था। फिर तो मैंने भी नियम बना लिया कि कभी स्वामी लोगों के लिए, तो कभी और किसी के लिए जूता जरूर लेती थी।

हमें गंगोत्री में छोड़कर स्वामी सत्यम् 'गौमुख' जाने लगे। रास्ता भयानक है कहकर हम लोगों को गंगोत्री में ही रहने को कहा। पर हम लोगों ने भी साथ जाने का निश्चय कर लिया, उनका पीछा नहीं छोड़ा। आखिर उन्हें अपना विचार बदलना पड़ा। शाम को हम सब गंगा किनारे बहुत आगे निकल गये। हम सब को थोड़ी-थोड़ी दूर में बैठने कह व जप-ध्यान का आदेश दे, वे आगे बढ़ते ही गये। मेरी इच्छा उनके पीछे जाने की हो रही थी, पर उन्होंने एकदम मना किया, और आगे बढ़ गये। अंधेरा होते देख हम सब वापस आ गये। नौकर को खिचड़ी का सामान देकर, सत्यव्रत जी के साथ टॉर्च लेकर स्वामी सत्यम् को देखने जा रही थी। काफी दूर से ज्योति-सी आती दिखी। सत्यव्रत जी ने कहा, 'हमें चुपचाप वापस होना चाहिए, सामने स्वामीजी आ रहे हैं, इस पवित्र भूमि की देवशक्ति उनके साथ है', और हम वापस आ गये।

जब स्वामीजी आये तो उनके चेहरे में विशेष चमक थी, आँखें लाल थीं। हम लोग कुछ कहते तो बोलते नहीं, हँस देते, लगता कुछ तेज-सा बिखर गया। मैंने भोजन के लिये अनुरोध किया तो 2-4 ग्रास खाकर चुपचाप सो गये। हम लोग काफी देर बैठे रहे। सोने के पहले उन्हें प्रणाम करने पर हम लोगों को विचित्र अनुभव हुआ। उन्हें 6-7 कम्बल ओढ़ाये, फिर भी उनके पैर बर्फ जैसे और उन्हें छूने पर हमारे शरीर में एक करेन्ट-सा उठता था।

सब सो गये, मुझे नींद नहीं आ रही थी। ठण्ढ के कारण ध्यान में बैठा भी नहीं गया। लेटकर योगनिद्रा करती रही, ऐसा अनुभव-सा हुआ कि हम सब को गंगा जी के किनारे अलग-अलग बैठा कर स्वामी सत्यम् आगे बढ़ते जा रहे हैं। चारों तरफ बर्फ है और माँ गंगा के किनारे-किनारे स्वामी सत्यम् चले जा रहे हैं। अब वे खड़े हो गये, शायद कुछ कह रहे हों या प्रार्थना कर रहे हों। गंगा जी से एक ज्योति-सी निकली, स्वामी सत्यम् ने उन्हें प्रणाम किया। ज्योति सामने ही बर्फ की शिला पर फैल गई, स्वामी सत्यम् उसी चट्टान पर ध्यान करने बैठ गये, प्रकाश किरण उन

पर बिखरी रही। ज्योति आलोप हो गई, बर्फ गिरनी शुरू हो गयी, स्वामी सत्यम् उसी चट्टान पर सो गये। बर्फ के गोले उन पर गिरते रहे और वे बर्फ से ढक गये, हम लोग उन्हें उठा रहे हैं। उन्होंने कहा – मेरा कहा मानोगे, मेरा साथ दोगे तो मुझे उठाना और मेरा स्वप्न टूट गया।

गंगोत्री में लगता, आनन्द सब तरफ फैला है। वहाँ की देव-शक्तियों ने स्वामी सत्यम् को दर्शन दिया और किसी विशेष कार्य का आदेश भी। माँ गंगा उन्हें साक्षात् दर्शन देकर उनके शरीर में एक दिन रहीं भी, जिसका अनुभव सभी ने किया।

गंगोत्री में एक दिन गंगाजी में स्नान करने लगे तो सत्यव्रत जी बोले, 'स्वामीजी, इनको कुछ दीजिए।' श्री स्वामीजी ने कहा, 'इनकी तकदीर में तो नहीं है, पर मेरी तकदीर में है। दे दूँगा, मगर मुझे वापस करना होगा। संकल्प करो कि तुम उसे मुझे दोगे, अपने पास नहीं रखना।' हमने कहा, 'हाँ, दे देंगे वापस।' और हमने संकल्प कर लिया। श्री स्वामीजी ने गंगा जल हाथ में लेकर संकल्प करके हमारे ऊपर छिड़कते हुए कहा, 'मैं दे रहा हूँ, तुम लोग वापस करोगे।' हमने कहा, 'आपकी जैसी इच्छा...।'

जय-जय-जय सत्यम्

गंगोत्री से वापसी के समय गंगा दशहरा के दिन उत्तरकाशी में स्वामी धर्मशक्ति की भावुक अनुभूति

हमने देखा और पहचाना ।
इस दिव्य-हृदय संन्यासी को ॥

सूर्य की ज्योति चमकती मुख पर ।
चन्द्रमा की शान्तिदायक शीतलता ॥
पावन गंगा की अमृतमय वाणी ।
फूलों की मोह-मनहर-मुस्कान ॥ 1 ॥

विश्व बंधुत्व की अमर भावना ।
प्रार्थना-जप-कीर्तन के उच्च विचार ॥
अन्दर-बाहर जन-जीवन में ।
रामकृष्ण गुरु जय-जय कार ॥ 2 ॥

धन्य धन्य जय जय अल्मोड़ा ।
जय-जय-जय सत्यम् सन्त महान् ॥
आलोकित हुआ विश्व का कोना ।
गा रहा है यही अलौकिक गान ॥ 3 ॥

मैंने भी देखा और पहचाना ।
अध्यात्म रत्न संन्यासी को ॥
मेरे पूज्य श्री पिता-गुरु-स्वामी ।
स्वीकृत कीजिए प्रणाम नमामि ॥ 4 ॥

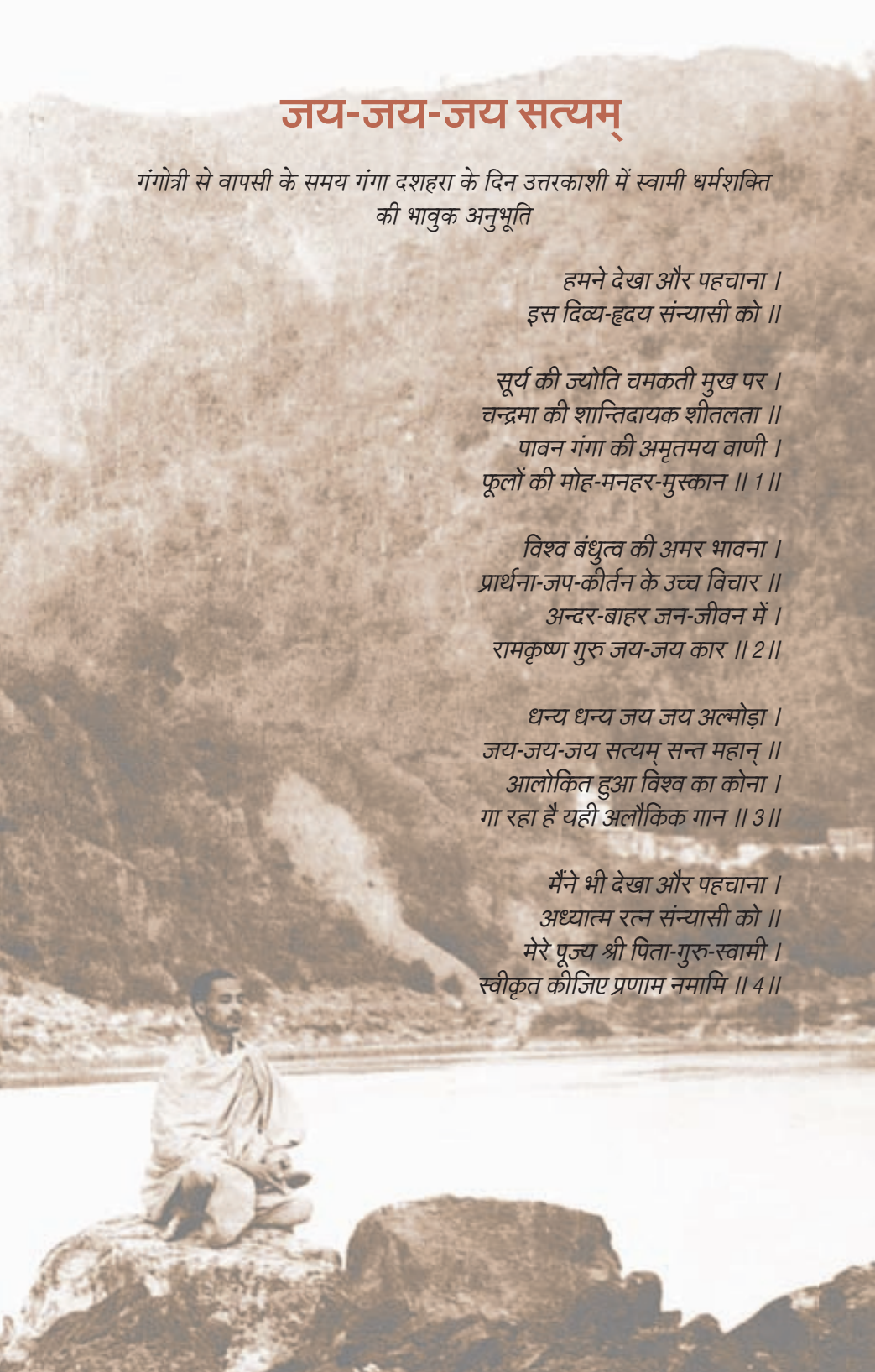

बसन्ती दीदी की दीक्षा

स्वामी धर्मशक्ति के अनवरत आग्रह और प्रयास से ही श्री स्वामी सत्यानन्द जी अंतत: गुरु का चोला पहनने पर विवश हुए। 'मेरे आराध्य' से उद्धृत यह प्रसंग गुरु और शिष्य की मधुर, क्रीडामयी लीला को उजागर करता है।

गंगोत्री में माँ के दर्शन के बाद गुरु मंत्र लेने की इच्छा होने लगी, पर मैं चुप ही रही। अमरकण्टक में नर्मदाकुण्ड के पास बैठने पर इच्छा प्रबल होने लगी। पूछने पर स्वामी सत्यम् कहते, 'गुरु तो एक ही हैं, स्वामी शिवानन्द जी। अगली तीर्थयात्रा में ऋषिकेश जा ही रहे हो, पहले मंत्र दीक्षा, फिर बद्री-केदार।' मैं कहती, 'गुरु जी से आशीर्वाद मिल चुका है, मंत्र घर पर ही मिलने का।' विधि का विधान, हमारा जाना रुक गया। अमरकण्टक से ही वापस आना पड़ा था।

साधना नियमित चलने लगी, हम क्लास लेते, सबको सिखाते, बताते, ध्यान में बैठते तो गुरु मंत्र के लिए बेचैनी होती। मंत्र के बारे में जब भी बात होती, स्वामी सत्यम् कहते, 'गुरु तो स्वामी शिवानन्द जी ही हैं, फिर से ऋषिकेश जाना पड़ेगा। देखो जी, हम गुरु तो बनेंगे नहीं, न ही आश्रम बनायेंगे। सोचते हैं, बारह वर्ष तक घूमते रहेंगे, बाद में गंगोत्री में ही रहेंगे।' और मैं रात-दिन देवी-देवता मनाती रहती।

स्वामी सत्यम् को हिमालय की देव-शक्तियों का आशीष-आदेश मिला ही था। गुरुदेव का आशीष मिलता था ही। चातुर्मास में साधना भी बहुत करते थे, उन्हें कुछ प्रेरणा मिली होगी शायद। 24 अगस्त को आये, दो दिन का सत्संग हुआ। सोमवार 26 तारीख की सुबह जाते समय उन्होंने कहा, 'हम गुरुवार 29 तारीख को सुबह 5 बजे आयेंगे, विशेष तैयारी करना, प्रसाद भी जोरदार बना लेना।' सब उन्हें देख रहे थे और वे हँस रहे थे। मैंने पूछा, 'लेकिन 29 तारीख को क्या है जो इतना करना है?' उन्होंने हँस कर कहा, 'तुम्हारा पुनर्जन्म होगा, सबको बुलाना होगा।' मैंने कहा, 'आप आयेंगे तो जैसा कहेंगे, तुरन्त सब हो जायेगा। हम तैयारी करके रखेंगे।'

29 अगस्त 1958, चौदस पूर्णिमा की सुबह वे आये। खूब तैयारियाँ हुईं, सबको बुलाया गया, सभी परिचित व सत्संगी तुरन्त आ गये। भजन-कीर्तन चला, हवन के साथ मंत्र दीक्षा, 15 मिनट तक *'ॐ श्री रामचन्द्राय नम:'* की ध्वनि गूँजती रही। 'मंत्र सभी ने साथ में कहा था' – इस तरह सबके सामने मंत्र देने, बोलने व सबको एक साथ बुलवाने पर सबने आश्चर्य व खुशी व्यक्त की।

श्रीमती रमा दांडेकर ने कहा, 'स्वामीजी, सामान्यतया तो खूब शंख, घड़ी-घण्टा बजाकर मंत्र कान में बोला जाता है, जिसे दूसरे तो क्या, मंत्र लेने वाला भी नहीं समझता। जीवन में पहली बार कुछ सुनने-समझने का सौभाग्य मिला है। सभी की

तरफ से एक बात कहना चाहती हूँ। बसन्ती दीदी के साथ ही मुझे व जिन बहन-बेटियों ने गुरु नहीं बनाये हों, उन्हें आपका आशीर्वाद व माला मिलेगी क्या?'

स्वामी सत्यम् ने कहा, 'मानव मन तो भला व बुरा सब ग्रहण करता है। समय पर मन के अन्दर उसकी झलक भी दिखती है। अगर सत्संग या प्रभु नाम की झाँकी दिखेगी तो मन कुछ देर ब्रह्मानन्द में लीन होगा। कभी गुरु-मंत्र की बात होगी, तो आज की मंत्र दीक्षा याद आ ही जायेगी। आप लोग चाहते हैं तो जिन्होंने गुरु मंत्र ग्रहण किया है, उनका नाम लिखकर सत्यव्रत जी को दे देंगे। हमें भी पता हो जायेगा। और माला सत्यव्रत जी ऋषिकेश से मंगवा देंगे, फिर हम उन लोगों को दे देंगे।'

कृष्ण शंकर देव ने कहा, 'यही अधिकार हम लोग भी चाहते हैं, हम लोग भी नाम दे सकते हैं क्या? हम सबके गुरु तो हैं ही आप, पर श्रेय तो सत्यव्रत भाई व बसन्ती दीदी को है। नन्दग्राम व ऋषिकेश की दूरी को मिलाने वाले पुल तो यही दोनों हैं। मीना दवे कहती है, स्वामीजी तो स्वामीजी हैं (प्रिय हैं) पर सत्यव्रत काका तो बड़े स्वामी हैं, उनसे थोड़ा डरना पड़ता है।'

स्वामी सत्यम् ने कहा, 'मीना ठीक ही कहती है। मैं तो सिर्फ स्वामीजी हूँ, कार्यकर्त्ता हूँ। पर सत्यव्रत जी सच में बड़े स्वामीजी हैं, दिन-रात प्रोग्राम बनाते रहते हैं। कभी गुस्से में कहता हूँ, जंगल में चला जाऊँगा, पर उनकी पकड़ इतनी मजबूत है कि तोड़ ही नहीं पाता। तब सोचता हूँ, यही मेरा कार्य-क्षेत्र है, यही मेरा सारनाथ है। बसन्ती जी तो उनसे भी एक कदम आगे हो गई। हम गुरु बनना ही नहीं चाहते थे, और जब बने तो एक शिष्या की जगह अनेक प्राप्त हो गये। प्रभु की महिमा ...।

आज से आप लोगों की बसन्ती दीदी, 'माँ धर्मशक्ति' हो गई, आप सब उसे आशीर्वाद दें कि यह नाम और मिशन का काम सार्थक हो, मेरा योग का रथ, 'सत्य व धर्म' के सहारे चलेगा, आगे बढ़ता जाएगा। प्रभु व गुरुदेव सबको आशीष दें।'

अम्माजी की स्मृति में

संन्यासी श्रद्धामति, गंगा दर्शन, मुंगेर

कार्य करते हुए कभी यह ख्याल ही नहीं आया कि समय पूरा होने पर व्यक्ति को यह भौतिक शरीर छोड़ना पड़ता है। इस सत्य का तब पता चला जब 5 दिसम्बर 2009 को परमहंसजी ने महासमाधि ली। तभी जीवन के अंत की झलक दिखाई दी। हम सभी परमहंसजी के जाने से दु:खी थे। मेरे दु:ख का मुख्य कारण यह भी था कि बहुत प्रयास के बाद भी मैं शतचण्डी महायज्ञ और योग पूर्णिमा में नहीं जा सकी थी।

महासमाधि के बाद हम परमहंसजी के चित्र और खबर समाचार पत्रों में पढ़ रहे थे। हम लोग परमहंसजी के विषय में पढ़ ही रहे थे कि तभी अम्माजी खुश होकर कहने लगीं, 'अभी मार्गशीर्ष खत्म हुआ है, बस वैशाख की पूर्णिमा पर हम भी जा रहे हैं, पाँच माह और हैं।' परमहंसजी के समाधि लेने से मैं वैसे ही दु:खी थी और साथ में अम्माजी की बात सुनकर मैं हतप्रभ रह गई। मेरे आँसू टपकने लगे। मैंने कहा, 'पहले मैं जाऊँगी, फिर आप।' उन्होंने कहा, 'नहीं, पहले मैं जाऊँगी और बाद में मैं तुम्हें बुलाऊँगी।' मैंने कहा, 'ऐसा क्यों?' तो उन्होंने कहा, 'क्योंकि तुम्हें मेरी सेवा जो करनी है। इसलिए तुम्हें मेरे बाद आना होगा।'

जब हम परमहंसजी की षोडशी से आये तो कुछ दिनों तक वे खूब खुश रहीं और कुछ-न-कुछ बोलती रहीं। कहतीं, 'अब बस मैं बोलती ही रहूँगी फिर उसके बाद मौन हो जाऊँगी।' शायद वे गोस्वामी तुलसीदास जी के इस भाव को ही व्यक्त कर रही थीं –

रामकथा पूरी हुई भयो चहत अब मौन ।
तुलसी के मुख दीजिये अब ही तुलसी सोन ॥

फिर शायद गंगोत्री माता के आशीर्वाद से उन्हें तीन साल का एक्सटेंशन मिला जैसा परमहंसजी को भी मिला था।

उन्हें अपने जाने का समय और दिन स्पष्ट पता था। वे कहती थीं, 'हम शान्ति से कब चले जायेंगे, पता भी नहीं चलेगा।' कैसे उनका सब काम होगा, यह भी वे जानती थीं। वे कहा करती थीं, 'करनी दिखे मरनी के समय'। अन्त समय पर व्यक्ति को इतना निश्चिन्त हो जाना चाहिये और वह तभी सम्भव है, जब वह अपने कर्त्तव्यों का पालन सही तरीके से करे। परमहंसजी ने कहा है न – 'मेरे होठों पर शिव का

नाम, मेरे मन में देवी दुर्गा का ध्यान। मुझे ज्ञान भी न हो कि मैं हूँ, और जब बुलावा आए तो मुझे ज्ञात भी न हो कि जा रहा हूँ।'

स्वामीजी कैसे कुशलता से उनका सब काम करेंगे, यह भी उन्हें पता था। वे कहती थीं, 'जैसा तुम्हारा घर-आँगन होता है, वैसा ही तुम्हारा द्वारा। जैसे माँ-बाप होते हैं, वैसे ही बच्चे होते हैं।'

गुरु के साथ अलौकिक सम्बन्ध

अम्माजी हमेशा कहती थीं, 'स्वामी सत्यानन्दजी मेरे गुरु हैं, पिता हैं, माँ हैं, भाई-बन्धु-सखा-पूज्य-प्रिय सभी कुछ हैं। वे मेरे आराध्य हैं।' शायद ही किसी शिष्य में गुरु के प्रति इतना उच्च भाव रहा होगा। सतयुग में एक-से-एक महान् कवि थे, लेकिन प्रभु राम ने गोस्वामी तुलसीदासजी को ही वह ज्ञान और शिक्षा दी, जिससे वे रामचरितमानस की रचना कर पाये। वैसे ही परमहंसजी के एक-से-एक विद्वान् और महान् शिष्य थे, लेकिन उनकी जीवनी को लिखने का सौभाग्य सिर्फ अम्माजी को ही प्राप्त हुआ, क्योंकि केवल उन्होंने ही परमहंसजी को दिन-रात प्रत्येक श्वास के साथ याद किया।

दिल्ली से दिनांक 21 जून, 1956 के पत्र में परमहंसजी ने सत्यव्रतजी को लिखा, 'अध्यात्म कार्य को वृद्धावस्था के लिए मत टालो, इसकी क्या गारंटी कि तुम सौ साल तक जीवित रहोगे। तुम सड़क पार कर रहे हो, एक मोटर ट्रक के नीचे आ सकते हो। इसलिये मैं तुम्हें सलाह देता हूँ कि तुम आध्यात्मिक साधना तुरंत प्रारम्भ कर दो।' गुरु शिष्य को कितने वर्षों पहले ही सचेत कर देते हैं कि तुम्हें क्या करना है!

31 दिसम्बर, 1971 को स्वामी सत्यव्रतजी की समाधि के बाद परमहंसजी 4 जनवरी को मुंगेर से रवाना होकर 5 तारीख को राजनाँदगाँव पहुँचे। समाधि दर्शन किया। अम्माजी ने उस समय पूछा था, 'स्वामीजी, मेरे लिए भी जगह बता दीजिए।' तब परमहंसजी ने कहा था, 'तुम्हें लेने मैं खुद आऊँगा। अभी बहुत समय है, उसकी चिन्ता मत करो।' और 12 फरवरी की रात को परमहंसजी वाकई अपनी उपस्थिति की झलक अपने कमरे में दिखा गए। उस रात उनके कमरे में चप्पल अस्त-व्यस्त थी, रजाई पर लगता था कि कोई बैठा था, जिसका दर्शन सभी आश्रमवासियों ने किया।

सन् 1959 में गंगोत्री यात्रा में परमहंसजी ने कहा था, 'तुम्हारे भाग्य में तो कोई संतान नहीं है, किन्तु मेरे भाग्य में एक है। हाँ, मैं तुम्हें कुछ दूँगा। परन्तु तुम्हें उसे मुझे वापस कर देना होगा।' अम्माजी यह कहते हुए मान गईं कि हाँ, मैं लौटा दूँगी।

आदर्श माता

रामायण में वर्णन आता है कि अदिति और कश्यप ने महान् तप किया और जब भगवान प्रसन्न हुए तो उन्होंने कहा, वर माँगो। पहले तो उन्होंने कुछ नहीं माँगा, लेकिन प्रभु के बहुत आग्रह करने पर कहा, 'हमें आप जैसा ही पुत्र मिले।' प्रभु ने

कहा, 'नहीं, मेरे जैसा तो कोई नहीं हो सकता, लेकिन तुम दोनों ने इतना कठोर तप किया है, तो मुझे स्वयं तुम्हारा पुत्र बनकर आना होगा।' कालान्तर में अदिति और कश्यप, कौसल्या और दशरथ बने और उन्होंने भगवान राम को पुत्र रूप में पाया। वैसे ही स्वामी निरंजन जी ने भी प्रभु रूप में स्वामी धर्मशक्ति और स्वामी सत्यव्रत के घर जन्म लिया। दोनों की जन्मों की तपस्या थी कि वे प्रभु की बाल-लीलाओं को देखें। स्वामीजी ने सात वर्ष की अवस्था में एक कविता में स्वयं लिखा था –

'नन्दग्राम' में कृष्णावतार, सुख का नहीं था पारावार।
तीनों काल के ज्ञाता गुरु ने, भविष्य वाणी की मृदु वाणी में।
'है मेरा यह मानस पुत्र, बनेगा योग-विद्या का सूत्र'।

मदालसा अपने बच्चों से कहती थीं – *शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि, संसारमायापरिवर्जितोऽसि* – 'तुम शुद्ध हो, प्रबुद्ध हो, निष्कलंक हो, माया से परे हो', वैसी ही शिक्षा अम्माजी ने पूज्य स्वामीजी को दी, जिन्हें आज सब जानते हैं। स्वामीजी ने स्वयं कई बार कहा है, 'मैं जो कुछ भी हूँ, अम्माजी के कारण हूँ।'

परमहंसजी भी कहा करते थे, 'एक उच्च आत्मा को जन्म देने के लिए माँ का शुद्ध और प्रबुद्ध होना बहुत आवश्यक है।' महान् नारियों का होना किसी भी देश के लिए गौरव की बात है। शायद यही कारण रहा होगा कि परमहंसजी ने रिखियापीठ में कन्याओं को पहले सुसंस्कृत करना प्रारम्भ किया। अम्माजी ने भारतीय नारियों के समक्ष एक ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया है कि एक महान् शिशु का जन्म देने के लिए कैसी तैयारी होनी चाहिए। स्वामीजी के जन्म के पूर्व उन्होंने कितनी साधना की, यह सब 'योग साधना' पुस्तक में है। 'मानस पुत्र' में तो उन्होंने स्पष्ट रूप से लिख दिया है कि उन्होंने स्वामीजी की परवरिश कैसे की।

सही मायने में देखा जाए तो अम्माजी सत्यानन्द योग की जननी हैं। आज जो सत्यानन्द योग दुनियाभर में फैल रहा है, उसका श्रेय उन्हीं को जाता है। सन् 1956 से 2012 तक वे परमहंसजी के बारे में ही लोगों को बताती रहीं। फिर कहतीं, अब तो मेरी पुस्तक 'मेरे आराध्य' आ गई है, उसमें पढ़ना। भक्त को आराध्य का गुण-गान किस तरह से करना चाहिए, यह कोई उनके जीवन से सीखे। अम्माजी ने जीना ही नहीं, बल्कि मरना भी सिखाया है। अपने कर्त्तव्यों का नि:स्वार्थ भाव से पालन करने से ही मुक्ति मिलती है।

कर्त्तव्य-परायणता की पराकाष्ठा

प्रकृति में सभी का अन्त निर्धारित है। कहते हैं, जब हम पहली श्वास लेते हैं तभी हमारी अंतिम श्वास भी निर्धारित हो जाती है। लेकिन अम्माजी अपने कहे अनुसार शीघ्र ही हमारे बीच आयेंगी और योग के इस महान् मिशन को आकाश की ऊँचाइयों

तक ले जायेंगी। जनमानस के लिए उन्होंने बहुत काम किया, कभी भी अपना स्वार्थ नहीं देखा। बहुत धोखा देने वाले मिले, लेकिन गुरु के सहारे चलते-चलते थकीं नहीं और अंत में उन्हीं के पास पहुँच गईं। अस्वस्थ होने पर भी उनकी मानसिक स्थिति बहुत शांत रहती थी। इससे ही उनकी उच्च अवस्था का अन्दाजा लगाया जा सकता है। जो किया, पूर्ण सेवा और समर्पण के भाव के साथ। अपने कर्त्तव्यों को करती चली गईं, लोगों के कहने पर कभी ध्यान नहीं दिया।

पुराने लोग बताते हैं कि अपने समय में वे बहुत कर्मठ और सक्रिय थीं। दादाजी के जाने के बाद प्रेस का सब काम सम्भालती थीं, योग क्लास भी लेती थीं। कहती थीं, 'मुझे अंग्रेजी तो आती नहीं थी। मैं क्या करती थी, परमहंसजी के हाथ के लिखे हुए लेख को जैसे-का-तैसा प्रूफ से मिला लेती थी। बस, अंग्रेजी की योगा पत्रिका तैयार!'

अम्माजी कहा करती थीं, 'संन्यासी को गर्व नहीं करना चाहिए, लेकिन हम गर्व के साथ यह कहते हैं कि हम 1954 से 2009 तक परमहंसजी के साथ रहे। जब तक वे थे तब तक इस बात का अनुभव हमें नहीं हो सका था, लेकिन अब जब वे सशरीर हमारे साथ नहीं हैं, तब हमें पता चला कि उनके साथ रहकर हमने क्या-क्या सीखा।' वे सभी को बताती थीं कि कैसे छोटी-छोटी चीजों में नियम-संयम रखकर व्यक्ति अपना पूरा जीवन अनुशासित कर सकता है। उनकी दिनचर्या, उनका काम करने का तरीका, बात करने का तरीका, समझने-समझाने का तरीका, सब अद्भुत था। वे कहा करती थीं, 'यदि बड़ा कार्य करना चाहते हो तो पहले छोटे कार्य को सही तरीके से करना सीखो। यही सफलता का मूल मंत्र है।' समय की वे बहुत पाबंद थीं। यदि भोजन के समय उनके पास कोई बैठा रहता, तो कहतीं, 'जाओ, अब खाने का समय हो गया है।' वे सबसे कहा करती थीं, 'समय पर खाओ, समय पर सोओ, समय पर उठो, इससे पूरी दिनचर्या व्यवस्थित हो जायेगी और तुम बिना थके बहुत काम कर पाओगे।'

वे जो भी कार्य करतीं, बड़ी सजगता से करतीं। कभी भी हड़बड़ाहट में कोई काम नहीं किया। काम करते समय उन्हें कभी यह नहीं लगा कि वे कर रही हैं। वे हमेशा कहतीं, यह तो श्री स्वामीजी का काम है।

प्रेम की प्रतिमूर्ति

प्रेम क्या होता है, यह उनसे मिलने पर ही जाना जा सकता था। जीवन के अंतिम समय में भी वे प्रेम से परिपूर्ण थीं। कोई भी आता, चाहे वह पहली बार ही क्यों न आया हो, चाहे डॉक्टर ही क्यों न हो, वे उसका हाथ थाम लेतीं, और सब को गले लगाना चाहती थीं। वे अपने दोनों हाथों को फैला देती थीं, चाहे वह स्वामी ज्ञानभिक्षु हों या शिवध्यानम्, वे लोग संकोच कर जाते थे, पर अम्माजी के मन में अपने-पराये का कोई भेद-भाव नहीं था।

वे दूसरों का बहुत ध्यान रखती थीं। यदि किसी के बारे में पता चल जाता कि वह बीमार है, तो कई दिनों तक रोज उसके बारे में पूछती रहतीं। उन्हें अपने स्वास्थ्य की इतनी चिन्ता नहीं थी, जितनी दूसरों की। *परहित सरिस धर्म नहीं भाई*– परहित की भावना मानो उनके रोम-रोम में समायी थी। जब भी मैं बीमार पड़ती तो वे बहुत परेशान हो जाती थीं। वे मुझे फल खाने को देतीं। घर पर मैं कभी फल नहीं खाती थी। यदि माँ कहती तो मैं टाल जाती और उनको पता भी नहीं चलता। लेकिन अम्माजी समझ गईं कि यह फल खाने में आना-कानी करती है। वे पहले ही मुझसे पूछ लेंती, 'तुम्हारे पास दस मिनट का समय है? मेरा एक काम करोगी?' तो मैं कहती, 'हाँ जरूर करूँगी, मेरे पास तो समय ही समय है।' वे कहतीं, 'मेरे पास बैठो और फल खाकर जाओ।' इस तरह वे मुझे फँसा देती थीं!

वे बच्चों से बहुत प्यार करती थीं। चार-पाँच साल का कोई छोटा-सा बच्चा आता, तो मुझसे कहतीं, 'मालूम है, वह मुझे कह रहा था, मैं यहाँ रहना चाहता हूँ।' बाल योग मित्र मण्डल के बच्चों को देखकर वे खूब खुश होतीं। कहतीं, 'ये बच्चे जरूर जीवन में कुछ अच्छा कर दिखायेंगे। देखो, रविवार को सुबह-सुबह कितनी ठण्ढ में भी आश्रम आ जाते हैं। इनके माँ-बाप कितने खुश होते होंगे कि हमारे बच्चे कुछ अच्छा सीख रहे हैं। नहीं तो दूसरे बच्चे रविवार को देर तक सोते रहते हैं, और फिर बाजार में आवारागर्दी करते हैं।'

अम्माजी में बहुत सहनशीलता थी। मच्छर काटने से भी वे विचलित नहीं होती थीं। कहती थीं, 'काटते हैं तो काटने दो, कुछ नहीं होगा।' वे कभी क्रोध नहीं करती थीं। मैं अलमारी से समान निकालती तो अक्सर सब अस्त-व्यस्त कर देती। वे जब देखतीं कि अलमारी का सामान बिखरा पड़ा है तो सब को व्यवस्थित करतीं और फिर मुझे बतातीं, 'देखो, मैंने इस तरह से जमा दिया है।' कहाँ कौन-सा सामान रखा है, वह भी बतातीं। मुझे बड़ा ही आश्चर्य होता था। वे चाहतीं तो मुझे कह सकती थीं कि तुम सामान ठीक से रखा करो या आज तुम अलमारी जमाओ। लेकिन उन्होंने कभी मुझे कुछ नहीं कहा।

सरल और सहज स्वभाव

उनके बारे में लिखना वैसा ही है जैसे सूर्य को दीपक दिखाना। उनसे मैंने दो मूल बातें सीखीं। पहली यह कि जीवन में सरलता परम आवश्यक है। बाहरी रूप से सरल होना बहुत आसान है, लेकिन आन्तरिक रुप से सरल होना बहुत कठिन। श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है न – *निर्मल मन जन सो मोहि पावा, मोहि कपट छल छिद्र न भावा।* वैसा ही उनका मन था। उनमें बुरा करने वाले के प्रति भी कोई छल या कपट का भाव नहीं था। समय आने पर वे सबके साथ अच्छा ही करती थीं।

दूसरी शिक्षा है सेवा। सिर्फ सेवा से ही जीवन में आगे बढ़ा जा सकता है। मैं बारह साल तक उनकी सेवा में रही, लेकिन उन्होंने कभी अपने आप को बड़ा नहीं समझा, हमेशा मुझसे प्रेम और आदर के साथ व्यवहार करती रहीं। यह मेरे लिए बड़े आश्चर्य की बात थी। आने वाले जन्मों में भगवान अगर मुझे कभी उनसे मिलाए तो उनका दास ही बनाए, क्योंकि सुखी रहने का यही रास्ता है। कबीरदास जी ने कहा है न, *'दुखीया सब संसार, सुखीया दास कबीर'।*

एक सच्चे संत की यही पहचान है कि वह सरल होता है। वे भी ऐसी ही थीं। तड़क-भड़क, दिखावा या आडम्बर उन्हें कभी पसन्द नहीं था। उनका पूजा-पाठ-जप-साधना करने का तरीका बहुत ही सरल था। भगवान राम और सीता माता को भी वे बहुत साधारण कपड़े पहनाती थीं।

उनके जीवन की एक सुन्दरता यह भी थी कि सब कुछ होते हुए भी उन्होंने अपने आप को कभी कुछ नहीं समझा। उनमें किसी बात का अहंकार नहीं था। कभी मैंने उनके मुँह से यह नहीं सुना कि मैंने इतना जप किया है, या मैं खूब आसन-प्राणायाम करती थी या मैं बहुत अच्छा योगाभ्यास सिखाती थी। पुराने और वरिष्ठ संन्यासी होने का गर्व भी नहीं था। वे अपने आप को बहुत साधारण रूप में प्रस्तुत करती थीं। बस 'गुरु का नाम और गुरु का काम' – यही भावना मन में रही। उच्च आध्यात्मिक उपलब्धि प्राप्त होने पर भी कोई ऐसा कर सके, यह बड़ी दुर्लभ बात है।

आश्रम में आने वाले कई लोग बदमाश किस्म के होते थे। मुझे उनका पता रहता था क्योंकि मैं बाहर घूमा करती थी और उनका व्यवहार देखती थी। लेकिन यदि वे भी उनके पास आते तो वे आशीर्वाद ही देतीं। जब मैं उन्हें बताती कि यह व्यक्ति ऐसा है, तो हँसकर कहतीं, 'जाओ, अब तो मैंने उसे आशीर्वाद दे दिया।'

जो लोग बहुत सहज और सरल होते हैं, उन्हें कुछ सोचने की जरूरत नहीं होती। भगवान स्वयं उनके बारे में साचते और सब व्यवस्था करते हैं –

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना: पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

इसलिए जब अम्माजी ने अपने भौतिक शरीर का त्याग किया, तब योगिनियाँ भी यहाँ उपस्थित थीं, साथ ही स्वामी सत्संगीजी को भी रिखिया से बुलाने की आवश्यकता नहीं हुई। इतना भव्य कार्यक्रम भी हो ही रहा था।

अन्तिम समय तक उनके जीवन का यही उद्देश्य था कि किस तरह परमहंसजी के काम को आगे बढ़ाया जाए। जब वे आशीर्वाद देतीं तो कहतीं, 'खूब काम करो, खूब नाम करो, खूब योग सिखाओ। सब को आश्रम के बारे में बताओ, सब को गुरुजी के बारे में बताओ।' सरल भाव से जो भी कह देतीं, वैसा ही हो जाता। कोई कहता, 'अम्माजी, मेरी बेटी को बेटा हो जाए, कुछ बता दीजिए।' तो कहतीं, 'सुन्दरकाण्ड का पाठ करो', और सच में उसे बेटा हो जाता! लेकिन उन्होंने अपने आप को हमेशा साधारण ही समझा। रामचरितमानस में आता है – *राम रमापति करधन लेऊँ, खिचहुँ चाप मिटे संदेहुँ।* जो लोग उन्हें साधारण समझते थे, वे अब समझेंगे कि वे क्या थीं।

अम्माजी के साथ बिताये अनमोल क्षण

पूज्य स्वामीजी ने अम्माजी की सेवा का जो दुर्लभ अवसर दिया, उसके लिए गुरु-दक्षिणा में यह जीवन ही क्यों न माँग लें, वह भी थोड़ा ही होगा। उनकी सेवा में रहते हुए तो मुझसे बहुत गलतियाँ हुईं। फिर भी मुझे विश्वास है कि वे जहाँ भी रहेंगी, मेरी प्रार्थना सुनेंगी और मुझे मेरी गलतियों के लिए क्षमा करेंगी। मीरा ने कहा है न, 'यदि मैं जानती प्रीत करन दु:ख होये, तो मैं वह कभी नहीं करती...' वही स्थिति आज मेरी है।

अभी भी रात में उनकी गन्ध और स्पर्श का अनुभव मुझे होता है। मेरे जीवन के अंतिम समय तक यही बना रहे, बस और कुछ नहीं चाहिए। वे मुझे बहुत प्यार करती थीं। जब भी मैं ट्यूरिस्ट गाइड से भारत के दर्शनीय स्थानों के बारे में पढ़कर सुनाती और कहती कि फलानी जगह तो जाना चाहिए तो मुझपर गुस्सा हो जाती थीं। कहतीं, 'सब जाओ जहाँ जाना है।' फिर धीरे से कहतीं, 'पहले मुझे चले जाने दो, फिर कहीं भी जाना। जब तक मैं हूँ, तुम कहीं जाने का मत सोचो।' उनके साथ रहने का बड़ा अद्भुत अनुभव था, जो शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। जो लोग उनके सम्पर्क में रहे हैं, वे इस बात को अवश्य समझेंगे।

मैं भी उन्हें बहुत चाहती थी। मुझे तो पशु-पक्षी को घर में रखना एकदम पसंद नहीं है, लेकिन मैं कृष्णा और पिताम्बर की भी सेवा करती रही, क्योंकि वे अम्माजी की चिड़ियाँ थीं। वे जब भी अस्वस्थ होतीं, तो मैं यहीं सोचती कि गुरुदेव उनकी यह अस्वस्थता मुझे दे दें और उन्हें ठीक रखें।

आश्रम में किसी के साथ कमरे में रहना होता है, तो लोगों को बहुत समस्या हो जाती है। लेकिन उन्हें मुझसे कभी परेशानी नहीं हुई। वे कहती थीं, 'तुम्हें पढ़ना है तो लाइट जलाओ, मुझे नींद आ जायेगी। पंखा चलाना है चलाओ, दरवाजा खोलना है खोलो, गीतापाठ सुनना है सुनो।' यह है वास्तविक लचीलापन। वे कभी इन बातों

से परेशान नहीं होती थीं। मेरे जीवन में उनका आना और उनके साथ रहना वैसा ही अनुभव है जैसे देवी दुर्गा या सरस्वती के साथ रहना। शायद ये देवियाँ भी ऐसी ही होती होंगी।

परमहंसजी के आशीर्वाद से यह सेवा मुझ से हो पाई, नहीं तो सेवा करना कोई आसान काम नहीं है। सेवा में सबसे बड़ी समस्या उपस्थित होती है मन के कारण। जब नकारात्मक भाव आने लगते हैं, तब उन्हें नियंत्रित करना बहुत कठिन हो जाता है। अब मुझे इस बात का अहसास होता है कि हम कुछ नहीं करते, कराने वाला कोई और है। हम केवल माध्यम हैं। वे मुझसे अक्सर कहा करती थीं, 'मेरी समाधि के बाद तुम श्रद्धांजलि अवश्य लिखना।' मैं कहती, 'अम्माजी, मुझे भाषा और व्याकरण का ज्ञान तो है नहीं, मैं क्या लिखूँगी?' तो वे कहतीं, 'नहीं, बहुत अच्छा लिखोगी। तुलसीदास जी को भी लिखना नहीं आता था, लेकिन उन्होंने रामचरितमानस लिखा न। वैसे ही तुम्हें भी मेरा आशीर्वाद है।'

महान् आत्मा का महाप्रयाण

फरवरी के पहले सप्ताह में मैंने उन्हें बातों-ही-बातों में कहा था कि 15 फरवरी को बिहार योग विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती है, बहुत-से लोग आने वाले हैं, स्वामी गिरीशानन्द जी और योगिनियाँ भी आने वाली हैं। तब से वे रोज सुबह-शाम मुझ से पूछती रहतीं कि योगिनियाँ कब आयेंगी। शायद उन्हें इन्हीं लोगों का इतंजार था और उन्हें पता था कि उनका सभी काम इनके माध्यम से होने वाला है।

जब उन्हें पता चला कि स्वामीजी मकर संक्रांति से पंचाग्नि साधना करने जा रहे हैं, तो वे जरा भी विचलित नहीं हुईं, बल्कि मुझसे कहा, 'वे परमहंस हैं, साधना तो करनी होगी।' इससे पता चलता है कि उनमें कितनी आध्यात्मिक गहराई थी। उन्होंने अपनी एक कविता में कितना सुन्दर लिखा भी है – *माँ की यही कामना बेटा, बनो गुरु मस्तक की लाली।* गुरु के बताये मार्ग पर चलो और उनका नाम रोशन करो, यही उन्होंने सिखाया। उन्होंने स्वामीजी से कह भी दिया था कि मेरी चिन्ता मत करो, अपनी साधना करो। मुझे लगता है कि उनके आशीर्वाद से ही स्वामीजी की पंचाग्नि साधना पूरी हो पाई। 11 फरवरी को स्वामीजी की पंचाग्नि साधना की पूर्णाहुति हुई

और 12 तारीख के ठीक 12 बजे अम्माजी ने समाधि ले ली। शायद उनकी अतिंम इच्छा स्वामीजी की पंचाग्नि साधना देखने की रही होगी।

वे अंत तक अपने मंत्र का उपांशु जप करती रहीं। उनके होठों को देखकर स्पष्ट था कि मंत्र जप अनवरत हो रहा है। फिर मंत्र जप धीरे होता गया और जैसे ही घड़ी का काँटा दोपहर के 12 बजे पर आया, जप समाप्त हो गया। 4-5 घंटे पूर्व सब इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो गई थीं। 2 घंटे पहले आँखों की पुतलियाँ दाँयी ओर घूम गईं, जहाँ दीवार पर स्वामी सत्यव्रतानन्दजी और स्वामीजी की तस्वीर लगी थी। बस उसके बाद उन्होंने हमेशा के लिए आँखे बंद कर लीं। जैसे ही धीरे से अंतिम मंत्र हुआ, घंटाघर की घंटी बजनी शुरू हुई और 12 घंटियाँ बजती चली गईं। वातावरण में अपार शांति और आनन्द छाया था। और इस शुभ बेला में अम्माजी ने समाधि ली। न कोई चीख, न कोई चिन्ता, न डर, न भय, न किसी प्रकार का दु:ख। जो अंतिम शब्द उन्होंने कहा, वह था – *हरि ॐ*।

12 फरवरी, 2013 का यह दिन बिहार योग विद्यालय के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। यह अन्त नहीं बल्कि शुरुआत है। उनके भौतिक शरीर त्यागने के बाद आश्रम और अधिक समृद्ध होगा। अब उनकी आत्मा स्वतंत्र रूप से कार्य करेगी। जो योग दीप सन् 1964 की बसन्त पँचमी को स्वामी सत्यानन्द जी ने प्रज्वलित किया है, वह अब और अधिक प्रकाश के साथ दीप्तिमान् होगा।

वे जीवित रहेंगी उन सभी माताओं में, जो अपने बच्चों को संन्यास के मार्ग पर चलने का आशीर्वाद देती हैं। वे जीवित रहेंगी उन सभी शिष्यों में, जो पूरे समर्पण भाव से गुरु की सेवा करते हैं। धन्य है वह माँ जिसका स्वामी निरंजनजी जैसा पुत्र है। धन्य है वह शिष्या जिसका स्वामी सत्यानन्दजी जैसा गुरु है। धन्य है यह भारत-भूमि जहाँ आज के युग में भी ऐसी माताएँ हैं। वे तब तक जीवित रहेगीं जब तक गुरु-शिष्य परम्परा चलती रहेगी। ऐसी महान् माता को कोटि-कोटि प्रणाम!

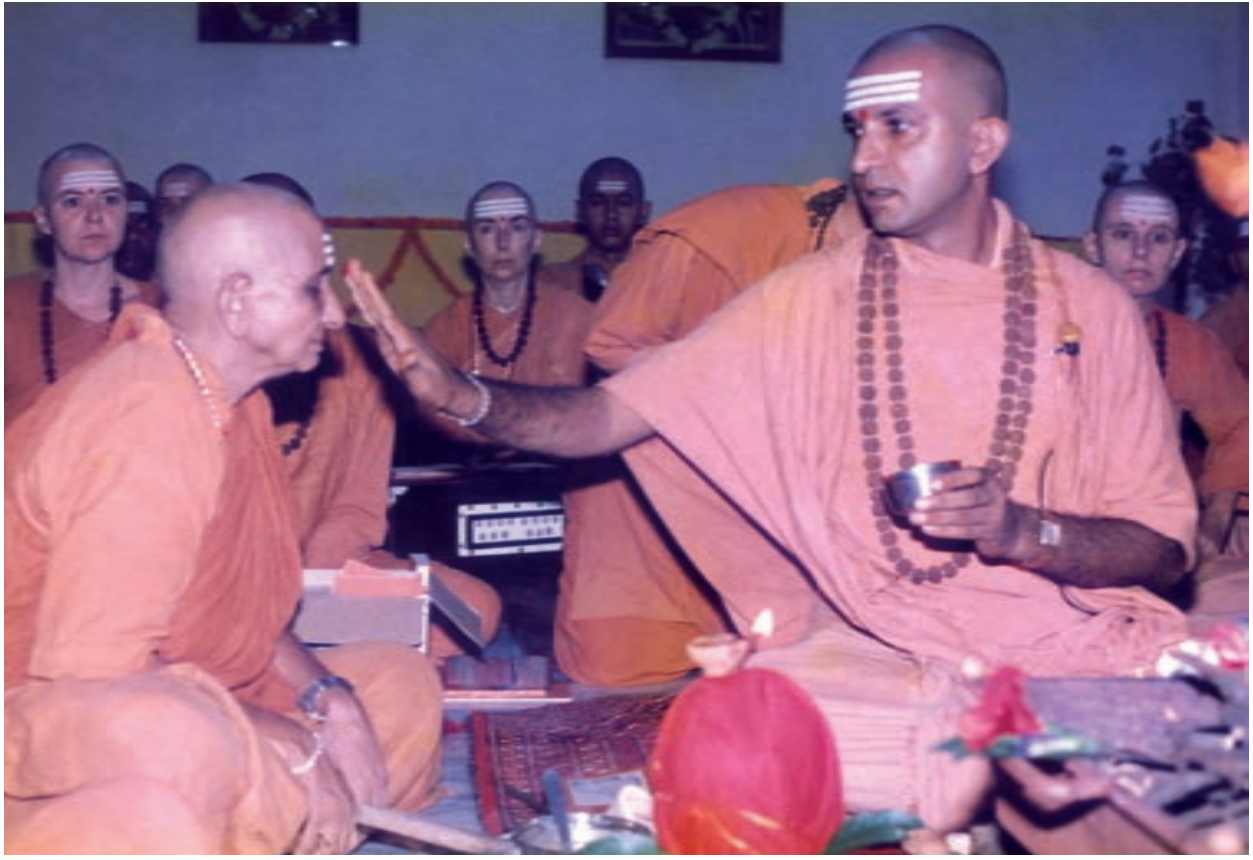

गुरु का अनमोल आशीर्वाद

स्वामी धर्मशक्ति के संस्मरण

एक दिन श्री स्वामीजी ने बताया कि मैंने एक सपना देखा। सपने में देखा कि एक बगीचे में घूम रहा हूँ और वहाँ गुलाब के ढेरों पौधे हैं, लेकिन एक भी फूल नहीं है। मैंने सोचा कि यह बगीचा कितना रूखा है, एक भी फूल नहीं है। मैं एक जगह बैठ गया। सोच ही रहा था कि फूल क्यों नहीं हैं यहाँ, तभी मेरे को सुगन्ध आयी। मैंने जाकर देखा तो बीच में गुलाब का इतना बड़ा एक फूल खिला था, बस।

यह सुनकर न जाने क्यों मुझे बहुत खुशी हुई। यह बात हुई 1959 में। फिर श्री स्वामीजी अकेले निकल गये गहन साधना करने। गुरु पूर्णिमा पर हम लोग उनके दर्शन के लिए बाँधा बाजार गये। साथ में पूजा का सामान रखा था। श्री स्वामीजी वहाँ जंगल में एकदम अकेले रहते थे। कुछ किलोमीटर दूर सेठ बलभद्र जी का मकान था। श्री स्वामीजी ने दो महीने के लिए विशेष साधना शुरू की थी, सुबह से शाम तक एकान्त, मौन और साधना।

हम लोग पहुँचे तो पता चला उस दिन सुबह से स्वामीजी की कुटिया का दरवाजा बन्द था। हमारी आवाज सुनकर उन्होंने पूछा, 'सत्यव्रत जी हैं क्या?' फिर दरवाजा खोलकर बोले, 'हम जानते थे आप लोग जरूर आयेंगे।' हमने प्रणाम करके कहा, 'स्वामीजी, हम पूजा का सामान लाए हैं।' श्री स्वामीजी ने कहा, 'चलो, पीछे एक बहुत सुन्दर पहाड़ी है। पीछे दरवाजे से दो मिनट का रास्ता है।' वहाँ एक पहाड़ था और उस पर हनुमान जी का मन्दिर। हम लोग गए, प्रणाम किया, फूल निकाल कर भगवान को चढ़ाए और पास ही बैठ गये दोनों। वहाँ खाली चट्टानें ही तो थीं। श्री स्वामीजी सीढ़ी पर बैठ गये। ऐसा लगा श्री स्वामीजी ध्यान में हैं। हमने सोचा अब इनके ध्यान में व्यवधान नहीं डालेंगे। हम दोनों थोड़ी दूरी पर बैठ गये और आँखें बंद कर ध्यान करने लगे।

अचानक मुझे विशेष अनुभव हुआ। आँखें खोलकर देखा तो लगा कि श्री स्वामीजी से तेज रोशनी आकर हम दोनों पर फैल गयी है। गर्मी से पसीने-पसीने हो गई, आँखें बन्द हो गयीं, फिर भी तेज सहन नहीं हो रहा था। हाथों से दोनों आँखों को ढक लिया। श्री स्वामीजी हँस पड़े। उनके हँसते ही ज्योति गायब हो गई... फिर थोड़ी देर बाद श्री स्वामीजी ने आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ उठाया, तो सत्यव्रत जी ने कहा – अब स्वामीजी को प्रसाद दो। मैंने आरती की। ज्यादा विधि तो हम उनके सामने करते नहीं थे, माला पहना दी, उनके माथे और पैरों में चन्दन लगा दिया और उनको प्रसाद दिया। उन्होंने हम लोगों को प्रसाद दिया और खुद भी खाया। आने के समय श्री स्वामीजी ने मुझसे पूछा, 'आसन बराबर करते हो न? ठीक है, शीर्षासन भी करते रहना। किसी के हाथ का खाना नहीं, 'परहेज से रहना, रामायण-गीता पढ़ते रहना ...।'

माँ के लिए निर्देश

महासमुन्द, 12-11-1959

अपने पत्र का जवाब सुनो धर्मशक्ति, जो भी हो रहा है ईश्वरेच्छा से हो रहा है, तुम मानव इच्छा से ऊपर उठ चुकी हो। तुम कहती हो, जीवन के पतझड़ में, जबकि तुम जीवन की दिशा बदल चुकी हो, यह बन्धन तुम्हें अप्रिय लग रहा है। क्या 35 साल की उम्र में ही जीवन की संध्या आ सकती है? नादान बच्ची, क्या तुम्हारी उम्र तुम्हारे ही हिसाब से है – न जाने कितने जन्म हुए होंगे, शरीर कई बार अरुणोदय में उदय और संध्या में अस्त हो चुका होगा। इसलिए बसन्त और पतझड़ का प्रश्न ही नहीं उठता। आत्मा तो अजर-अमर है, अविनाशी है, अनन्त है।

नारी की प्रगति धीरे-धीरे होती है, पर होती है और मजबूत होती है। स्त्री का मन सचमुच पारा है, सध गया तो एक आश्चर्य की सृष्टि की जा सकती है। पर स्त्रियाँ इस मार्ग पर आई कहाँ? कौन उन्हें रास्ता दिखलाते हुए खुद भूल न जाये। कई लोगों ने रास्ता दिखलाया तो खुद भूल पड़े। यह तो एक गजब का संयोग है कि तुम दोनों समानान्तर चल रहे हो मेरे पीछे। जब तुम कुछ पा जाओगी तो एक युग पलटेगा। हम हजारों औरतों को तुम्हारे द्वारा राह दिखलायेंगे।

धर्मशक्ति, तुमने अपनी दिशा को, अपने मन को मोड़ लिया है। तुम्हें जरूरत नहीं, पर देश को तो जरूरत है। यह बच्चा युग की माँग है, तुम तो निमित्त हो,

मात्र बोझा ढोने वाली। यह बच्चा सत्यव्रत-बसन्ती का नहीं, समाज, देश, राष्ट्र का होगा। जैसे ब्रह्मा जी के मानस-पुत्र शंकर जी हैं, वैसे ही यह सत्यम् का मानस-पुत्र होगा। धर्मशक्ति, तुम यशोदा माँ और वह बालकृष्ण होगा। गोकुल (नन्दगाँव) में यशोदा (धर्मशक्ति) की गोद में बाल-लीला के पश्चात् सारा विश्व उसका द्वारका क्षेत्र बनेगा। समझो धर्मशक्ति, जिसे तुम अपने खून से सींच रही हो, वह फूल संसार को सौरभ से भर देगा।

अब तुम्हें अपनी दिनचर्या बदलनी होगी। आसन के नाम पर घूमना जारी रहे, भोजन के बाद वज्रासन में जरूर बैठना, जप-ध्यान बराबर करना, उपवास छोड़ना पड़ेगा कुछ दिनों के लिये। भोजन शुद्ध-सात्त्विक हो। यह व्रत ले लो कि किसी के यहाँ भोजन नहीं खाओगी, बाजार की भी मिठाई वगैरह नहीं खाओगी। घर का पूरा काम अपने हाथों करना। झाड़ू-बुहारु, बर्तन-कपड़े, पूरा काम नहीं तो कुछ-कुछ तो करते ही रहना, बाकी काम नौकरानी तो करेगी ही, पर रसोई तुम स्वयं बनाना, आलस नहीं करना।

नियमित रामायण पाठ करना, गीता भी साथ में। अच्छा साहित्य पढ़ना, लिखना, देखना, सुनना, समझना। रामायण बालकाण्ड बार-बार पढ़ना, अच्छी बातें सुनना, बोलना, समझना, विचारना। मन को छूट नहीं देना, भटकने नहीं देना, हमेशा नाम-स्मरण, मानसिक जप चलता रहे। कभी-कभी मन अशान्त हो, चंचल हो तो उसे दिव्य जीवन लाइब्रेरी में लगा दो। जैसे तुम कभी लाइब्रेरी खोलकर बैठती हो, और सब पुस्तकों के चित्र देखती हो, नाम पढ़ती हो, शिवानन्द साहित्य उत्तम खाद है। कौशल्या के राम, कैकई के भरत, सुमित्रा के लक्ष्मण के बारे में सोचना। सीता, सावित्री, मदालसा के बारे में सोचना। तुम्हें गमले के पौधे का निर्माण नहीं, उस वृक्ष का निर्माण करना है, जो अक्षयवट से भी महान् हो।

सत्यम् का यही आशीर्वाद है कि तुम यथार्थ में माँ बनो, अपने अंश से ऐसे सूर्य का निर्माण करो कि वह अज्ञानांधकार दूर कर दिव्य ज्योति फैलाये। धर्मशक्ति उस पर मोह-ममता नहीं करना, उसे धरोहर समझना। जप-ध्यान, भजन-कीर्तन, सत्संग करना, डरना नहीं, घबराना नहीं, सत्यव्रत जी से कहो-स्वामीजी की पुस्तकें सुनाया करें। मन को हमेशा उलझाये रहना स्वाध्याय में। मन तो बिगड़ैल घोड़ा है, छूट जरा भी नहीं देना।

तुम्हें विशेष लिखने की जरूरत नहीं है। तुमने मेरे साथ यात्रा की है, सत्संग किया है, रही हो, मेरा काम किया है, प्रोग्राम बनाया है। तुम्हें सब मालूम है। फिर भी गुरु होने के नाते समय-समय पर पत्र लिखूँगा। तुम्हें जो पूछना है, पूछ लेना। सन्तों के आशीर्वाद सहित सत्यम् हमेशा तुम्हारे साथ है।

–सत्यम्

प्रकाश का अवतरण

स्वामी धर्मशक्ति के संस्मरण

माँ गंगा और गुरुदेव के आशीष प्राप्त कर स्वामीजी ने प्रबल आत्मविश्वास से अपनी शिष्या को आशीर्वाद देकर, अपने मिशन के कार्य-वहन हेतु अभूतपूर्व शिष्य के आवाहन हेतु साधना की ...। देव शक्ति व महान् गुरु का आशीष फलीभूत हुआ ...।

14 फरवरी 1960 की प्रभात बेला में प्रियदर्शी शिशु धर्मशक्ति की गोद में आया। उस समय श्री स्वामीजी बम्बई में थे, उन्होंने विश्वप्रेम से कहा, 'मुझे जिसका इंतजार था, वह आ गया। आज टेलीग्राम मिलेगा।' फिर श्री स्वामीजी ने हमें पत्र भेजा कि यहाँ कुछ प्रोग्राम चल रहा है, मैं बंध गया हूँ, अभी नहीं आ सकता।

20 मार्च को श्री स्वामीजी राजनन्दगाँव आये। 35 दिन के बालक को गोद में लेते ही उनकी आँखें चमक उठीं, लगा कि गुरुदेव और बालक शिष्य की नजरें मिलीं...। उन्होंने बालक को आशीर्वाद दिया और कहा, 'ईश्वर की रोशनी का यह अवतरण है। अन्धकारमय कोनों तक प्रकाश भरने के लिए ईश्वर के प्रकाश का अवतरण हुआ है। यह विशुद्ध लगन का ही स्वरूप है। यह केवल नैसर्गिक लगन है। यथार्थत: यह पुत्र होकर नहीं आया है, इसे एक निश्चित कार्य की पूर्ति के लिए आना पड़ा है। इसके प्रति हम केवल कर्त्तव्य के ऋणी हैं। यह कोई भी बच्चों-सा ज्ञान रहित लगाव पसन्द नहीं करेगा। हमें इसे बड़े कार्य के लिए प्रस्तुत करना है – हाँ, वह कार्य जो अनेक आत्माओं से सम्बन्धित है।'

'यह आवश्यक सामग्री के साथ आया है। यह प्रकाश बन कर आया है। इसे राम-नाम के जल से सींचते रहना। यह अनमोल फूल है, अपने श्री-सौरभ से विश्व को भर देगा। मुझे तुम दोनों पर विश्वास है कि इस दिव्य रत्न को यथार्थ में दिव्य बना सकोगे। यह सिर्फ माता-पिता के लाड़-प्यार-स्नेह का अधिकारी नहीं, घर-बाहर, देश, राष्ट्र, विश्व का भी अधिकारी होगा। धर्मशक्ति तुमने नाम पूछा था न, तो यह 'निरंजन' है, इसे निरंजन ही कहना। तुम्हारा यह महामंत्र है –

मंत्र सत्यम्, पूजा सत्यम्, सत्यम् देवो निरंजनम् ।
गुरोर्वाक्यम् सदा सत्यम्, सत्यमेवं परम पदम् ॥

स्वर्णिम स्मृतियाँ

स्वामी निरंजनानन्द द्वारा सन् 1971 में लिखी प्रथम पुस्तक 'आकाश का तारा, धरती का फूल' (स्वर्णिम संग्रह – 1 में पुनर्प्रकाशित) की प्रस्तावना से उद्धृत

मेरे गुरुदेव, विश्व विख्यात स्वामी सत्यानन्द सरस्वती सर्वप्रथम सन् 1956 में 6 जून को राजनाँदगाँव पधारे थे। उस समय मेरे पिता स्थानीय कपड़ा मिल में बड़े बाबू थे। स्वामीजी जब भी आते, हमारे निवास स्थान में ही रहते। मिल के अफसर, माताएँ और बच्चे दिनभर आते रहते और हमेशा सत्संग होते रहता था। पता नहीं, किस महान् भावना से प्रेरित होकर अम्माजी ने स्वामीजी के एक-एक शब्द को नोट करना शुरू किया। अम्मा जी की अलमारी में कितनी ही नोट बुक हैं, जिनमें स्वामीजी ने अपने बारे में जो कुछ बताया है, अपने हाथों से जो भी लिखा है, संस्मरण, लेख, कविता, वगैरह, उनके पत्रों के संग्रह, प्रवचनों का संग्रह – सब कुछ है।

मैं छोटा था तो कहानी के नाम पर अम्मा जी पूज्य स्वामीजी की ही बातें बताया करती थी, और सब शैतानी भूलकर उसको रटता रहता था। दादा जी कहते, 'निरंजन, तुम तो टेप रेकार्डर हो, इन्हीं बातों को दुहराते रहते हो।' जब चार वर्ष की उम्र में पढ़ना शुरू किया, तो अम्मा जी की डायरी, नोट बुक, पत्र सब निकाल लेता, और एक-एक शब्द पढ़ते रहता। अम्मा जी स्नेहवश मुझे कुछ नहीं कहती पर ध्यान रखती कि एक भी कागज गड़बड़ न हो। जब मैंने लिखना सीखा, अम्मा जी को लिखते देख मैं भी लिखने बैठता। अम्मा जी बतलाती जाती और मैं छोटे-बड़े, टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिखता और अम्मा जी उसे संभाल कर रख लेती थीं। इस तरह मेरे लिखने का श्रीगणेश हुआ। मैं पूछता, 'अम्मा जी इन सबका क्या करोगी,' तो कहतीं, 'निरंजन, तुम बड़े होकर एक बिल्डिंग बनवाना। नाम रखना *'सत्यधाम'*। उसके कमरे में स्वामी जी के सभी चित्रों को, पुस्तकों, पत्रों व लेखों के संग्रह को म्यूज़ियम जैसा सजा देना, वहीं पर मेरे सब लेखों को भी रख देना। यह तो स्वामीजी का जीवन चरित्र ही है। तुम्हारे लिये तो यह *'गुरु गीता'* है।

'स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – एक साक्षात्कार' नामक पुस्तक छपने के बाद, अम्मा जी मुंगेर आईं, तो मुझसे बोलीं, 'निरंजन, मेरे पास भी स्वामीजी के बारे में बहुत सामग्री है, उसे इसी तरह छपाना चाहिये क्या?' मुझे बड़ी खुशी हुई। अम्मा जी ने स्वामीजी से आज्ञा लेनी चाही छपाने की। पूज्य स्वामीजी ने कहा, 'हमसे क्यों पूछते हो जी, आप लोग चाहो तो जरूर छपवाओ।'

9 अगस्त को स्वामीजी के साथ राजनाँदगाँव आया, तो फिर से अम्मा जी की अल्मारी की तलाशी ली। सब लेखों को देखा, पढ़ा और बाल सुलभ चंचलता कहिये

कि अम्मा जी से बोला, 'आप पहले मेरा वाला लेख तैयार कीजिये। मेरी बातें मेरे नाम से, आपकी बातें आप के नाम से।' पिता जी से भी कहा, 'मेरी वाली पुस्तक पहले छपाइये।' दादा जी ने कहा – 'सब तुम्हारा ही तो है भाई। दोनों तुम्हारे नाम से छपा दें?' मैंने कहा, 'नहीं, एक में मेरा, एक में अम्मा जी का नाम रहेगा।' वैसे दोनों परिचय-माला के रूप में एक-दूसरे के पूरक ही होंगे।

मुझे आशा है पूज्य स्वामीजी के भक्त, शिष्य और परिचित इस पुस्तक को पसन्द करेंगे और इससे लाभ उठावेंगे। यह तो मेरा प्रथम प्रयास है। प्रभु मुझे शक्ति दे कि मैं इसी तरह अनमोल ग्रंथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर सकूँ। यह पुस्तक अपने दिग्विजयी गुरुदेव के कर कमलों में समर्पित करता हूँ, 108 मणियों को तेजोमय बनवाकर, विश्व को उजागर मानवता देने के उपलक्ष्य में। देव, यह तो तुम्हारी ही सम्पदा है, तुम्हीं हो लिखने वाले, तुम्हारी चीज तुम्हें ही स्वीकार करनी होगी। तुम्हारे ही शब्दों में –

देह भ्रान्ति वश दास कहाता, जीव बिम्ब में अंश तुम्हारा ।
आत्मभावमय तुम हम दोनों, एक सत्य है निश्चय मेरा ॥

– निरंजन

आयुष्मान् निरंजन,

तुम्हारी यह पुस्तक एक अनमोल ग्रन्थ 'गीता' है। इसमें गुरु स्वामी सत्यानन्द जी (भगवान व्यास देव) और शिष्य निरंजन (श्री गणेश जी) का सदेह चित्र झलक रहा है। मुझे पूज्य स्वामीजी की पुत्री और तुम्हारी अम्मा जी होने का गौरव प्राप्त है। तुम्हें आशीर्वाद देना चाहती हूँ, पर कैसे, तुम तो सत्यम्मय हो। यही कामना करती हूँ, गुरुदेव सुमेरु बनेंगे, और तुम बनो धागा, जो माला को अपने में पिरो कर, सुमेरु के ऊपर छोटा-सा फूल जैसा हमेशा खिला रहता है।

रक्त मांस मज्जा मेरा सब, चित्त वृत्तियाँ भी मेरी ।
स्वर मेरा औ ज्योर्तिमय सुत, तेरी प्राण प्रभा मेरी ॥
तुममें यह तेरा पन मेरा, गति मेरी तेरे पग में ।
बेटा मम मातृत्व भरा है, तेरे नस-नस रग-रग में ॥
ज्योति किरण तू अखिल विश्व का, मेट तमस् की अंधियाली ।
माँ की यही कामना बेटा, बन गुरु मस्तक की लाली ॥

– माँ धर्मशक्ति, 1971

मेरा स्वप्न पूरा हुआ

राजनाँदगाँव में योग विद्यालय स्थापित होने के उपलक्ष्य में योगविद्या के मई 1971 अंक में प्रकाशित स्वामी धमशक्ति के उद्‌गार

मुझे बहुधा स्वप्न में एक प्रियदर्शी संत के दर्शन होते थे, कुछ संकेत भी मिलते थे, पर समझ नहीं पाती थी कुछ भी। सोचती थी, बचपन से ही संत-महात्माओं का जीवन चरित्र पढ़ती हूँ और उन पर श्रद्धा रखती हूँ, विशेषकर संत ज्ञानेश्वर और जगतगुरु शंकराचार्य की जीवनी, विशेष प्रिय लगने के कारण ही इस तरह के स्वप्न आते रहते हैं।

2 अप्रैल, 1953 की शाम को ऋषिकेश पहुँचने पर गंगा किनारे स्वामी शिवानन्दजी के पास खड़े एक तरुण तेजस्वी संन्यासी को देखते ही ऐसा लगा जैसे मेरे स्वप्नलोक का शंकराचार्य यही है। थोड़ी देर बाद पता चला कि इनका नाम स्वामी सत्यानन्द सरस्वती है। 'योग-वेदान्त' के सम्पादक स्वामी सत्यानन्द जी ही थे, उनसे पत्र व्यवहार भी प्रारम्भ हुआ। अप्रैल 1956 में स्वामीजी परिव्राजक होकर देहली में प्रवास कर रहे थे, हमने उन्हें राजनाँदगाँव पधारने का आग्रह किया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया।

6 जून की सुबह सूर्य की प्रथम किरण के साथ ही उनका शुभ आगमन हुआ। सत्यव्रत जी मुझे इधर-उधर सूचना देने का काम बता कर स्टेशन चले गये। मेरा मन भी छटपटाने लगा और मैं सब काम छोड़कर स्टेशन चल पड़ी। स्वामीजी बाहर आ

ही रहे थे कि मुझे देखकर उन्होंने कहा – माताजी आप...। इसके आगे मुझे कुछ भी सुनाई नहीं पड़ा। मन, प्राण, आंखें कहने लगीं, यही है आदिगुरु शंकराचार्य जो कह रहे हैं, 'माँ अपने वायदे के अनुसार मैं आ गया...।' मेरे जीवन की एक बड़ी भारी कमी पूरी हो गई। मैं माँ हूँ, मेरा शंकराचार्य, मेरा ज्ञानेश्वर मेरे घर आ गया। मेरे जीवन की दिशा ही बदल गई। हमने उनसे बहुत कुछ सीखा, समझा और पाया, पर अभिलाषा बढ़ती ही गई। कितनी यात्रायें कीं, साथ रहे, शिविर लगाये, कैम्प किये पर लगता, स्वप्न अभी स्वप्न ही है।

मुंगेर का आश्रम, अखण्ड ज्योति, देश-विदेश में आश्रम बने, योग शिविर, योग सम्मेलन, तथा योग आन्दोलन की जबरदस्त लहर फैलने लगी। देश-विदेश के साधकों का अम्बार, 9 माह, 3 माह का सत्र, फिर प्रारम्भ हुआ 3 वर्ष का संन्यास सत्र, जिसमें देश-विदेश के 108 साधकों ने अपने को एक महान् यज्ञ के निमित्त होम कर दिया। इस यज्ञ के होता, बालक, युवा, वृद्ध, नर-नारी सभी हैं, पर वे अब बालक-बालिकाएँ या युवक-युवतियाँ न होकर, केवल मानव शरीर में पवित्र आत्माएँ हैं। दुनिया वालों ने साधु-संन्यासियों के बारे में अभी तक जो भी देखा-सुना था, उससे भिन्न नजारा देखकर आश्चर्यचकित हो, आगे देखने और उनके पीछे चलने का संकल्प लेने लगी।

कौन जानता था 1956 में वामन अवतार जैसा वह साधु, जिसने अपने मोहक रूप और प्रिय वाणी से सबको मोह लिया था, जो बच्चों के साथ खेलकर उनका कन्हैया बन गया; बड़ों के मध्य, गीता-भागवत, वेद-पुराण की बातें सुनाकर, आसन-प्राणायाम सिखाकर, वेद-उपनिषद की गूढ़-से-गूढ़ बातें भी सरल तरीके

से समझाने वाला, हमारे साथ रहने वाला, हमारा पूज्य व प्रिय संन्यासी एक दिन देश-विदेश में योग क्रांति मचा देगा। पर वे तो लौह-संकल्प लेकर संन्यासी बने थे और गुरु स्वामी शिवानन्द जी से 'दिग्विजयी' होने का जो आशीर्वाद प्राप्त किया है, वह वट वृक्ष-सा फैल रहा है।

स्वामीजी योग संस्कृति के पुनरुत्थान के लिये कटिबद्ध हैं। यौगिक नियमों को आधार बनाकर वे संस्कृति और स्वास्थ्य की नींव तैयार करते हैं। प्राचीन विद्याओं को पुन: प्रकाश में लाने में कितना बड़ा योगदान है। योग के खोये हुये गौरव को फिर से नये युग में, उसके मूल्य की रक्षा करते हुये पुनर्स्थापित कर रहे हैं। योग को विज्ञान के साथ तौलकर संसार को दिखा दिया कि योग सतयुगीय नहीं, कलियुगीय है, और हमारे आधुनिक समाज के लिये अत्यन्त उपयोगी विद्या है। विज्ञान व एटम के युग में भी योग उतना ही उपयोगी है, जितना प्राचीन ऋषियों के युग में था। स्वामीजी ने लोगों को चैलेंज दिया है कि योग पर अथौरिटी के साथ बोलने के पहले आओ, कुछ अभ्यास करो।

स्वामीजी अपने पास आने वाले सभी दु:खी, आर्त, युवक, वृद्ध, बीमार और कमजोर लोगों को वही रास्ता बतलाते हैं जो उनके लिये सवोत्तम होता है। मनुष्य कितना दु:खी है और उसे सच्चे ज्ञान की कितनी जरूरत है, यह वे तुरन्त ही पहचान लेते हैं। उनमें संन्यासी की मस्ती, योग का तेज और योग की धुन है। यह उनकी बातें नहीं, योग आन्दोलन की हवा है, जो मुंगेर से शुरू होकर देश-विदेश में फैलते हुए, राजनाँदगाँव में बहुमुखी गंगा की धारा-सी बहने लगी है।

मेरा स्वप्न साकार हुआ। योग आन्दोलन के प्रणेता परमहंस स्वामी सत्यानन्दजी का 23 अप्रैल को मध्याह्न बेला में सूर्य की प्रचण्ड किरणों के साथ राजनाँदगाँव में प्रवेश हुआ। लोगों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। मैंने भी उनका स्वागत उन्हीं के द्वार पर किया। पूज्य गुरुदेव का प्रवास यहाँ चार महीने तक होगा। जून में उन्हें योग सम्मेलन में आयरलैण्ड जाना होगा, जुलाई में वापस राजनाँदगाँव पधारेंगे तथा गुरु पूर्णिमा के पावन पर्व पर वे राजनाँदगाँव योग विद्यालय का विधिवत् उद्घाटन करके पवित्र अखण्ड ज्योति प्रज्वलित करेंगे। अपने शिष्यों को चातुर्मास की शिक्षा व साधना भी यहीं करायेंगे। 2500 वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध ने अपने हजारों शिष्यों को वैशाली में जो शिक्षा दी थी, वही सौभाग्य राजनाँदगाँव को प्राप्त हो रहा है। इतिहास के पन्ने हमारे सामने पलट कर आ गये हैं। हमारे दरवाजे पर गंगा लहरा रही है, हमारी योग्यता और आवश्यकता के अनुसार जल हमें ले ही लेना चाहिये। मेरा स्वप्न पूरा हुआ।

सौ सौ अंधियारी रातों में, तेरा ध्यान कहीं सुन्दर है।
मन्दिर मस्जिद गिरजा में, मन के भगवान कहीं सुन्दर हैं ॥

श्रद्धा की प्रतिमूर्ति

संन्यासी मंत्रनिधि, मुंगेर

अम्माजी के बारे में अगर पूरे दिन भी वर्णन करें तो वह कम पड़ेगा। उनका सबसे बड़ा गुण, उनकी सबसे बड़ी शक्ति, उनकी श्रद्धा थी। उन्होंने वास्तव में रामचरितमानस की इस पंक्ति को जीवन में चरितार्थ किया था–

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥

उनके अन्दर अटूट श्रद्धा थी। हम लोग उनके साथ रहे तो बहुत दिनों से, उनका बहुत प्रेम, वात्सल्य और सान्निध्य भी मिला, पर उनकी श्रद्धा का अनुकरण नहीं कर पाए। उनके अन्दर ऐसी श्रद्धा थी कि अपना इकलौता बालक तक गुरुजी को समर्पित कर दिया। जैसे कोई वीरांगना अपने पति और पुत्र को तिलक लगाकर युद्धभूमि में भेजती है, वैसे ही हमारी अम्माजी ने अपने गुरु के योग मिशन कार्य को आगे बढ़ाने के लिए अपने लाडले को उनके चरणों में दे दिया। वे माँ नहीं, देवी माँ थीं, श्रद्धा की प्रतिमूर्ति थीं। और पुत्र भी ऐसा, जिसने छोटी उम्र में ही गुरु आश्रम आकर सारी विद्याओं को आत्मसात् कर लिया– *गुरुगृह गये पढ़न रघुराई अल्पकाल सब विद्या पाई।* इसके बाद वे विदेश में भी रहे, चाहते तो शादी कर सकते थे, मौज-मस्ती कर सकते थे, लेकिन माँ की ऐसी प्रेरणा थी, ऐसी शिक्षा थी कि कर्त्तव्य-पथ से कभी च्युत नहीं हुए। जैसे एक आम के पेड़ को हम अच्छे से सींचते हैं तो फल बहुत सुन्दर होता है, वैसे ही अम्माजी ने हमारे गुरुदेव को सींचा।

अम्माजी के मजबूत और अडिग विश्वास को मैं हमेशा महसूस करती थी। पिछली शरद पूर्णिमा के समय उनकी तबियत कुछ खराब हो गयी थी तो हम लोगों ने पूछा कि अम्माजी, क्या आप शरीर छोड़ देगीं। कहा, 'नहीं रे! मुझे शरीर अभी नहीं छोड़ना है। गुरुजी मुझे लेने आएँगे तब तो मैं जाऊँगी। मैं ऐसे नहीं जाऊँगीं।' उनका ऐसा अटूट विश्वास था कि हमारे परमहंसजी उन्हें लेने के लिए स्वयं आए। मुझे उनके कमरे के दर्शन का सौभाग्य मिला। मैंने देखा कि मसहरी उठी हुई थी, रजाई चपेती हुई थी और उसपर ध्यानस्थ होकर हमारे बाबा बैठे होंगे। तब मुझे अहसास हुआ कि अम्माजी का विश्वास कितना मजबूत रहा होगा। जिनके हृदय में गुरु के

प्रति श्रद्धा होती है, वे सचमुच गुरु के माध्यम, गुरु के अपने बन जाते हैं – *नाहं कर्ता गुरु: कर्ता गुरु: कर्ता हि केवलम्।*

अनुशासनप्रिय ऐसीं कि हमारे पूज्य गुरुदेव की माता होने के बावजूद कभी यह जताया नहीं। हम लोग कई बार उनके पास जाकर कहते कि अम्माजी, हमें यह चाहिए। तो कहतीं, 'यह चाहिए तो ऑफिस में लिखकर दो, तुम्हें मिल जाएगा। मैं थोड़े ही दूँगी। मैं भी तो इस आश्रम की एक संन्यासी हूँ।' इस तरह से वे हम लोगों को अनुशासन का पाठ पढ़ाती थीं। खुद मिसाल बनकर हम लोगों को बताती थीं कि ऐसा ही अनुशासन तुम भी रखो।

वे एक महान् तपस्विनी थीं। जब 1971 में सत्यव्रत जी गुजर गए, तो ग्यारह साल तक पति और बच्चे के बिना गुरु-कार्य में संलग्न रहीं। उनके मकान का दरवाजा कभी-कभी खुला रह जाता था। कोई आकर बोलता कि अम्माजी, आपका दरवाजा खुला है, तो कहतीं, 'अरे, इस घर में ऐसा क्या रखा है। अगर कोई आएगा भी और उसे कोई जरूरत की चीज दिखेगी तो लेकर चला जाएगा। हमें उस वस्तु की जरूरत नहीं।'

दूसरों के प्रति उनमें बहुत करुणा और संवेदनशीलता थी। बिना कुछ दिये किसी को भेजती नहीं थीं। चाहे प्रेम दें, कोई वस्तु दें, या जो भी दें। जनवरी में गुरुदेव के संन्यास दिवस पर मैं अखण्ड रामायण किया करती हूँ। उसके बारे में वे कहतीं, 'अरे इतनी ठण्ढ में कैसे करोगी?' तो मैं बोलती थी कि अम्माजी, मैं थोड़े ही करती हूँ, वह तो गुरुजी करते हैं। तो हँसकर कहतीं, 'हमारे गुरुजी पंचाग्नि का सेवन करते थे और तुम ठण्ढाग्नि का!' जब मैं रामायण पाठ से पहले उनके पास पूजा की सामग्री के लिए आती थी, तो बड़ा आश्चर्य लगता था। कम उम्र के लोग बहुत-सी चीजें भूल जाते हैं, लेकिन अम्माजी एक-एक चीज तैयार रखती थीं। कौन-सा कपड़ा रामजी का ओढ़ाना है, कौन-सा चंदन लगाना है, कौन-से कपूर से उनकी आरती होनी है। एक-एक चीज का बारीकी से ध्यान। मैं सोचती कि काश मेरे पास भी इस तरह की बुद्धि और ज्ञान होता तो मैं भी ऐसा करती। मैंने आश्रम में जो भी देखा, सीखा और प्रेरणा पाई, वह सिर्फ अम्माजी के साथ रहकर।

गुरुदेव भी जब अपनी माँ से मिलते थे तो बड़े सहज और सरल भाव से। सफलता की परकाष्ठा पर वे इसलिए पहुँचे कि उनके हृदय में वही श्रद्धा और विश्वास था। उसी श्रद्धा और विश्वास के बल पर वे आगे बढ़े और मैं उनसे विनती करती हूँ कि इसी तरह का श्रद्धा और विश्वास हम सब शिष्यों को प्रदान करें। उस महान् माता को कोटि-कोटि नमन करती हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि उनकी प्रेरणा और शक्ति सदा सब को मिले। वे तो गुरु के धाम में, शिवानन्द बाबा और सत्यानन्द बाबा के धाम में पहुँच गईं हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि वहाँ से लौटकर वे जरूर गुरु का काम जारी रखेंगी और हम लोगों को प्रेरणा देती रहेंगी।

दो नन्हें पौधे

योगा तथा योगविद्या पत्रिकाओं के मुंगेर से प्रकाशित होने के उपलक्ष्य में योगविद्या के दिसम्बर 1976 अंक में स्वामी धर्मशक्ति की स्वामी सत्यव्रतानन्द जी के प्रति भावुक श्रद्धांजलि

देव, तुम्हारे अधूरे कार्य को पूर्ण करने का प्रयास ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। जीवन का चक्र चल रहा है, समय बीत रहा है, लगता है कल की ही बात है, पर पाँच वर्ष का लम्बा समय बीत गया है। कैसे समय बीता व कैसे काम होते रहा, समझ से परे है – मेरे पास सोचने-समझने का समय भी तो नहीं है।

जब अथाह समुद्र में डूब रही थी, गुरुदेव ने सहारा देकर कहा, 'सत्यव्रत जो काम चालू कर गये हैं, उसे बढ़ाना है, अवधूत बनकर उनके काम को पूरा करना है।' मैंने उनके आदेश का पालन किया, क्योंकि मुझे हर क्षण, हर पल तुम्हारा सहारा मिला। मेरे माध्यम से सब कुछ तुम्हीं करते रहे, श्रेय मुझे मिला। लोगों की यह धारणा निर्मूल हो गई कि प्रेस का काम नहीं चल सकेगा।

16 वर्ष पूर्व पूज्य गुरुदेव ने 2 नन्हें पौधे 'योग विद्या' व 'योगा' नाम देकर तुम्हें सौंपे थे। उन्हें अपने खून से सींच कर बड़ा किया, वे आज वटवृक्ष-से देश-विदेश में फैल गये हैं। इन्हीं आशाओं के प्रतीक पौधों को तुम्हारी इच्छानुसार गुरुदेव को कई बार सौंपना चाहा, और अब उन्होंने इन्हें अपने संरक्षण में ले लिया है। जनवरी 77 से 'तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा।' उस महीने से दोनों पत्रिकाएँ आश्रम ग्राफिक्स, मुंगेर में छपेंगी। गुरुदेव के आज्ञानुसार हिन्दी पुस्तकें योग विद्या प्रेस, नन्दग्राम से छपती रहेंगी।

एक काम पूरा हुआ, कुछ और अधूरे काम हैं उन्हें भी जल्द-से-जल्द पूरा कर सकूँ, यही कामना और प्रार्थना है, अपने गुरु और गोविन्द के चरणों में –

मेरी भाव तूलिका स्वामिन, तेरी जीवन रेखा ।
शून्य पटी पर अज्ञ चितेरा, लिखता मन का लेखा ॥
गीत बने मेरी उच्छवासें, गीत बने हिय के स्पन्दन ।
देव तुम्हारे ही गौरव के, गीत बने सब हास्य रुदन ॥

योगविद्या से मेरा अपनापन है, इसे देखकर मुझे बहुत खुशी होती है। अभी भी कोई मुझे पढ़कर सुनाता है, तो बहुत अच्छा लगता है।

– स्वामी धर्मशक्ति, 2012

महान् गुरु की स्मृति में

सन् 2010 की गुरु पूर्णिमा के अवसर पर गंगा दर्शन, मुंगेर में दिया गया स्वामी धर्मशक्ति का अंतिम सार्वजनिक संदेश

आज गुरु पूर्णिमा के महान् दिन और शुभ पर्व पर मैं पूज्य गुरुजनों के चरणों में प्रणाम करके कुछ शब्द कहना चाहूँगी। अपने गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी का आशीर्वाद मेरे साथ बहुत रहा है। गुरुजी से मैं पहली बार सन् 1953 में मिली। ऋषिकेश में उनके दर्शन हुए जब परम गुरुदेव, स्वामी शिवानन्द जी के चरणों में हम पहुँचे थे। उस समय स्वामी सत्यानन्द जी को वहाँ देखकर मुझे लगा कि ये ध्रुव-प्रह्लाद जैसे छोटे-से बालक यहाँ पर कहाँ से आ गये। उसके बाद जब हम लोगों ने स्वामी शिवानन्द जी से अनुरोध किया कि हमारे यहाँ राजनाँदगाँव में प्रवचन के लिए किसी को भेजिए तो उनका यही उत्तर था कि आपका प्रान्त हिन्दी भाषी है और मेरे यहाँ सब दक्षिण भारतीय संन्यासी हैं, सिर्फ एक संन्यासी है जो हिन्दी, अँग्रेजी और संस्कृत समझता है। लेकिन वह मेरा सेक्रेटरी है, मेरी पुस्तकों का अनुवाद करता है, प्रूफ देखता है, 'योग वेदान्त' का संपादक है और बैंक-मार्केटिंग आदि सब काम वही करता है। पर कभी भेजूँगा उसको। इस तरह तीन वर्ष बीत गये।

सन् 1956 में जब श्री स्वामीजी परिव्राजक जीवन के लिए निकले और दिल्ली में निवास कर रहे थे, तब स्वामी शिवानन्द महाराज का पत्र हमें मिला कि आप लोग हमेशा स्वामी सत्यानन्द को बुलाते थे न, अब बुलाइये और उनके खूब प्रोग्राम बनाइये, उनकी खूब मदद कीजिए। प्रभु की कृपा कि वे हमारे यहाँ आये और हम लोग इस तरह रहने लगे मानो कभी एक-साथ ही थे, पर किसी कारण बिछुड़ गये थे। हमने कभी उनको न बड़ा समझा, न पराया समझा, बल्कि अपने परिवार का एक आत्मीय सदस्य माना।

गुरुदेव के साथ प्रथम गुरु पूर्णिमा

आगे चलकर उनके प्रोग्राम बनाते रहे, काम चलता रहा, वे आते-जाते रहे। हम लोग कई सालों से 'योग वेदान्त' पढ़ रहे थे और उसमें गुरु पूर्णिमा के बारे में भी बहुत कुछ पढ़ने को मिला था। सन् 1956 की गुरु पूर्णिमा में हमने भी उसी तरह से योजना बनायी और उनकी पूजा की तैयारी की।

उन्होंने कहा, 'देखो, पूजा गुरु की होती है, मैं तो मात्र शिष्य हूँ।' हमने कहा, 'नहीं, आप गुरु के प्रतिनिधि हैं। हम लोग आप ही की पूजा करेंगे।' उन्होंने जवाब में कहा, 'मैं न तो कभी गुरु बनूँगा और न ही आश्रम बनाऊँगा। इसलिए मेरी पूजा मत करो।' पर हम लोगों ने ज़िद की, 'नहीं, हम तो आपकी पूजा करेंगे।' खैर, अन्त में पूजा हुई, हम लोगों ने उनको गुरु माना, हालाँकि उन्होंने इस पद को कभी स्वीकार नहीं किया।

इस तरह समय बीतता गया और प्राय: हर गुरु पूर्णिमा में मैं उनके चरणों के पास बैठने का सौभाग्य माँग पाती थी। संयोगवश बीच में बहुत-सी घटनाएँ हुईं और सन् 1958 में उन्होंने हमें दीक्षा दी। तब से तो फिर हमारा सम्बन्ध गुरु और शिष्य का ही हो गया। हम लोग उनके साथ रहते, उनका काम करते, उनके प्रोग्राम बनाते। उनके बारे में जो देखा, सुना, समझा और अनुभव किया, वह यही कि वे एक महान् आत्मा हैं, जिनमें ईश्वरीय शक्ति की प्रचुर धारा बह रही है। वे सचमुच गुरु बनने के योग्य हैं। शिवानन्द जी महाराज ने उनको इस तरह की शिक्षा दी कि वे वास्तव में एक महान् गुरु बने और गुरु बनकर एक ऐसा आदर्श हम लोगों के सामने रखा, जिस पर हमें अभिमान हो। एक संन्यासी को अभिमान नहीं करना चाहिए, लेकिन इस विषय में हम जरूर अभिमान से कहते हैं कि हम उनके शिष्य हैं और वे हमारे गुरु थे, गुरु हैं और गुरु रहेंगे।

संकल्प दिवस

आज गुरु पूर्णिमा की पावन, पवित्र और शुभ घड़ी में हम चाहते हैं कि इस दिन को एक संकल्प दिवस के रूप में माने। जो कुछ हमने उनसे सुना, समझा और जाना है, उसमें से कोई शिक्षा हम अपने जीवन में उतार लें। उनका कोई एक आदर्श, चाहे वह उनका सेवाभाव हो, या कर्त्तव्यपरायणता या गुरु के प्रति निष्ठा, कुछ भी लेकर हम आज संकल्प लें कि हम इस तरह अपने जीवन को उनके प्रति समर्पित करते हैं। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

हम उनके साथ हर गुरु पूर्णिमा में रहे, जगह-जगह साथ गये, उनका सत्संग-प्रवचन सुना, बातें सुनीं, उनसे झगड़ा किया और उनसे दुलार भी पाया। उन महान् गुरु के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए हम उनके पीछे-पीछे यहाँ मुंगेर भी आ गये, उनका काम करते रहे और आज ऐसा दिन भी आया कि हम उनकी छाया-मात्र के लिए तरस रहे हैं। लेकिन हमारा यह संकल्प है कि वे हमारे साथ हैं, हमारा जीवन उन्हीं का जीवन है, हमारा सब कुछ उनका ही है। हमारा कुछ भी नहीं है, हम जो कुछ कर रहे हैं, उनके लिए ही कर रहे हैं।

इसी तरह जीवन बीतते-बीतते हमने जो देखा, सुना और समझा, उससे तो हम यही समझते हैं कि वे एक देव, महान् ऋषि, अद्भुत संत और महामानव हैं, उनके जैसे लोग आजकल दुनिया में हैं ही नहीं। उन्होंने अपने कितने रूप दिखाये। जब मैं उनके साथ रही, वे मेरे पिता थे, भाई थे। अब गुरु हैं, भगवान हैं, मेरे सर्वस्व हैं। मैं जब उन्हें याद करती हूँ तब अंदर से इतनी खुशी होती है कि कितनी भाग्यशाली हूँ मैं, इतने दिनों तक एक देवता के सम्पर्क और छत्र-छाया में रही, उनका काम करती रही। अभी भले ही कुछ कर नहीं सकती, लेकिन उनकी बातें तो कह सकती हूँ, उनके बारे में बता तो सकती हूँ। उनकी यात्रा चलती रहे, उनका काम होता रहे।

गुरु का नाम, गुरु का काम

शिवानन्द जी महाराज का आशीर्वाद हमेशा उनके साथ था, जिसके बूते पर उन्होंने भगीरथ जैसा असाध्य काम कर दिखाया। मैं इतने वर्षों से देख रही हूँ, आज स्वामी शिवानन्द जी के हजारों शिष्य दुनिया में सब ओर फैल गए हैं। सब योग का काम कर रहे हैं, योग का प्रचार कर रहे हैं, लेकिन उनके नाम से नहीं, अपने नाम से। और हमने अपने श्री स्वामीजी को देखा, उनका हर काम गुरु जी को समर्पित था। गुरु का नाम, गुरु का काम, अपना कुछ नहीं। ऐसे होते हैं सच्चे संन्यासी और ऐसी होती है सच्ची गुरु सेवा। वे हम लोगों के सच्चे गुरु हैं। भले ही वे अपने आप को गुरु न मानते हों, लेकिन हम उनको गुरु मानते हैं, क्योंकि हम ने उनके साथ रहकर जो अनुभव किया, वह यही कि वे सर्वसमर्थ और सर्वशक्तिमान् थे, जो चाहे कर सकते थे।

उनके जीवन का हर पड़ाव बीस वर्षों के क्रम से चलता रहा। घर में रहे बीस वर्ष, गुरु आश्रम में रहे बीस वर्ष, कार्य क्षेत्र में रहे बीस वर्ष और उन्होंने जिस साधना और संन्यास धर्म का पालन किया, उसमें भी बीस वर्ष रहे। बड़ी शांति से सबसे मिलते-जुलते, काम करते। एक दिन भी निष्क्रिय नहीं रहे कि आज मैं थक गया, या आज मैं यह काम नहीं कर सकता। करते रहे काम आखिर तक। वे चाहते तो बीस वर्ष और रह सकते थे, लेकिन उन्होंने यही सोचा कि मेरा मन पक्का है, लेकिन शरीर पक्का नहीं रहेगा। इसलिए मुझे जाना है, जाना है और जाना है। और वे ऐसे आराम से गये जैसे हम लोग बद्री-केदार जाते हैं। सुना था कि केदारनाथ से पाण्डवों के सबसे बड़े भाई युधिष्ठिर सीधे स्वर्ग चले गये थे, पहाड़-ही-पहाड़ चढ़ कर। वैसे ही श्री स्वामीजी भी चले गये हम लोगों को छोड़ कर।

लेकिन उनका आदर्श, उनका काम, उनका नाम हमारे साथ है। और उनके नाम के पीछे, उनके गुरु का नाम। हम भी कितने भाग्यवान् हैं कि शिवानन्द महाराज की परम्परा से जुड़ने का अवसर मिला। वे एक आदर्श संन्यासी थे, जिन्होंने योग को पूरी दुनिया में फैलाया। उनके पहले जितने संन्यासी या महात्मा हुए, सब अपनी साधना करते रहे। अपना भविष्य उज्ज्वल बनाया, लेकिन दुनिया के लिए कुछ नहीं किया। बाद में कुछ लोगों ने दो-चार पुस्तकें भी लिख दीं, लेकिन ऐसा कोई ठोस काम नहीं हुआ जिससे लोग कुछ सीख सकें, समझ सकें। शिवानन्द महाराज ने सबका आह्वान किया, 'हिमालय में बैठकर साधना करने वालों! पहाड़ों से नीचे आओ और भारत में घूम-घूमकर प्रचार करो।' यही काम उन्होंने स्वयं किया। देश और विदेश में फैले उनके शिष्य आज भले ही उनका नाम न लें, लेकिन काम उन्हीं का कर रहे हैं।

किसी आदमी के भले ही दस लड़के रहें, लेकिन नाम एक से चलता है। वैसे ही स्वामी शिवानन्द जी का नाम स्वामी सत्यानन्द जी से, जिन्हें वे लाड़ से सत्यम् कहा करते थे, चल रहा है। शिवानन्द जी सत्यम् को बहुत चाहते थे, बहुत मानते थे। शिवानन्द जी के आदर्श का पूरा दायित्व सत्यम् पर रहा, जिसे उन्होंने अच्छी तरह से निभा भी लिया।

हमारा यह कर्त्तव्य बनता है कि आज के दिन एक संकल्प लें कि श्री स्वामीजी के काम को हम जरूर पूरा करेंगे और जो वे कहा करते थे, वही करेंगे। वे फिर हमारे बीच आयेंगे, और हम रहें या न रहें, लेकिन वे दुनिया को अलग रास्ता जरूर दिखायेंगे। मैं ज्यादा नहीं बोल सकती, बस इतना और उनके बारे में कह सकती हूँ कि मेरी रग-रग में, नस-नस में उनके शब्द हैं। मैं धन्य हूँ, जो उनकी कर्मभूमि में बैठी हूँ, उनका काम देख रही हूँ, उनका नाम सुन रही हूँ। मेरे लिए यह महान् अभिमान की बात है। असीम गौरव है मुझे कि मैं श्री स्वामी सत्यानन्द जी की शिष्या हूँ।

माँ की डोली

स्वामी धर्मशक्ति के समाधि-दर्शन पर संन्यासी योगप्रिया, पटना के उद्‌गार

फूलों की शैय्या बिछी है
गुरु तत्त्व की सिरहानी
कई जन्मों की फेरी माला
थामे खड़े हैं त्रिपुरारी

पहरे पर संन्यास दण्ड है
चतुर्दिक ॐ ध्वजा लहराती
लोरी है सौन्दर्य लहरी की
रक्षा राम स्तोत्र की

भक्तों का है स्नेह अनोखा
रंग-बिरंगी पुष्पों में
बड़े-बड़े डाहलिया औ' गेंदा
सदाबहार भी प्यारी सी

अखाड़े में नित प्रज्वलित रहती
प्रेम भरी दीपक बाती
युग-युग तेरा नाम रहेगा
बात करे दुनिया सारी!

फिर आना माँ! जल्दी आना
प्रेम सुधा बरसाने को
आँख बिछाए बैठे हम सब
दर्शन तेरा पाने को!

श्रद्धा से झुके सर और सजल नयनों ने दी अम्माजी को विदाई

'दैनिक जागरण' के 14 फरवरी, 2013 संस्करण से साभार

मुंगेर, जागरण प्रतिनिधि: बिहार योग विद्यालय, मुंगेर में बुधवार की सुबह से ही लोगों की भीड़ जुटने लगी थी। *हरि ॐ* के स्वर कानों में पड़ने के बाद अंदर दाखिल होते ही लोगों की लंबी कतारें दिखाई दीं। श्रद्धा से झुके सर और सजल नयन अम्मा जी के नाम से प्रसिद्ध स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती के अंतिम दर्शन को व्यग्र हो रहे थे। बाल योग मित्र मंडल के बच्चे और योगाश्रम के संन्यासी लोगों को धीरे-धीरे पंक्ति में सत्यम् उद्यान की ओर ले जा रहे थे। वहाँ मंत्रों के अनवरत उच्चारण के बीच सिंहासन पर बैठी अम्मा जी के निष्प्राण शरीर को लाया गया। इसके बाद पंचामृत से अम्मा जी का शाही स्नान कराया गया। फिर उन्हें तमिलनाडु से आई सन्यांसिनी बहनों ने नूतन वस्त्र पहनाया। इसके बाद स्वामी निरंजनानंद सहित योगाश्रम से जुड़े कई संतों ने अम्मा जी की आरती उतारी और उनके चरण कमलों पर श्रद्धा सुमन अर्पित किए।

इसके बाद अम्मा जी को भू-समाधि दी गई। इस दौरान संन्यास पीठ के संन्यासियों के अलावा सैकड़ों श्रद्धालुओं की आँखें भी सजल हो गई थीं। लेकिन,

इन सबके बीच अपने हाथों से अपनी जननी, स्वामी धर्मशक्ति को भू-समाधि देते हुए भी स्वामी निरंजनानंद का चेहरा दमक रहा था। चेहरे पर पीड़ा हर लेने वाली मुस्कान के साथ स्वामी निरंजनानंद ने अम्मा जी को विदाई दी। मन पर ऐसा नियंत्रण देख हर कोई चकित था। मानो स्वामी निरंजनानंद अम्मा जी द्वारा रचित पुस्तक 'मेरे आराध्य' में कविता 'मेरा दीपक' की पंक्ति 'तुम बनोगे धरा के गुरु महान्, शांति दूत असहायों के सहारे। देते रहना प्रेरणा दीन-दुखी को, चुपचाप सहकर अंधकार के वार' को चरितार्थ कर रहे थे।

बाद में स्वामीजी ने कहा कि यह आनंद और उल्लास का अवसर है, शोक या अवसाद का नहीं। जब आत्मा शरीर के बंधन से मुक्त होती है, तब उसकी ऊर्जा और आभा सर्वव्यापी हो जाती है। स्वामी धर्मशक्ति ने अपना पूरा जीवन अपने गुरु के चरणों में समर्पित कर दिया। परिस्थितियाँ कितनी भी कठिन और प्रतिकूल क्यों न रहीं हो, उनका विश्वास कभी नहीं डगमगाया। वे सदा लोगों के जीवन में आशा, उत्साह और प्रेरणा संचारित करती रहीं। मुझे गर्व है कि मैंने ऐसी माँ की कोख से जन्म लिया। वे मेरे गुरु की प्रथम शिष्या रही हैं। वे धर्मपरायणता और शक्ति की प्रतीक थीं। अम्माजी ब्रह्मलीन हो गईं, लेकिन अपने द्वारा लिखी पुस्तक 'मेरे आराध्य' की पंक्तियों को चरितार्थ कर गईं – 'मैं, मेरे पति व पुत्र स्वामीजी के पुनीत लोक-कार्य के प्रति समर्पित हो चुके हैं। जिस धर्म को स्वामीजी जीवन में उतारने को कहते हैं, उसी पवित्र धर्म के प्रचार हेतु मेरा जीवन समर्पित है, न्योछावर है।' सचमुच में जीवन की अंतिम साँस तक अम्माजी गंगादर्शन में गुरु के संदेशों व विचारों के प्रचार-प्रसार की मुहिम में जुटी रहीं।

मातृस्वरूपा देवी

स्वामी धर्मशक्ति के षोडशी अनुष्ठान की पूर्णाहुति पर स्वामी निरंजनानन्द के उद्‌गार

हम लोग पढ़ा करते हैं कि गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध अनेक जन्मों का होता है, और निरन्तर कायम रहता है। पहले तो लगता था कि यह बात केवल किताबों में लिखी जाती है, लेकिन पिछले बावन वर्षों में हमने जो अनुभव किया उससे आज हम यह कह सकते हैं कि जो बात लिखी गई है, वह अक्षरश: सत्य है।

ऋषिकेश से सम्बन्ध

सन् 1953 में हमारे पिताजी को, जिनका नाम सत्यव्रत था, ऋषिकेश में एक सम्मेलन में भाग लेने का निमंत्रण मिलता है, जिसका संचालन स्वयं स्वामी शिवानन्द जी महाराज कर रहे थे। उन्होंने सम्मेलन में भाग लिया और वहाँ पर सक्रिय काम भी किया। उस समय न तो टेप-रिकार्डर थे, न ही अन्य तरह के यंत्र। जो बोला जाता था, उसे लोग शॉर्ट हैण्ड में नोट करते थे। सम्मेलन में स्वामी शिवानन्द जी का जो भी सत्संग-प्रवचन होता था, हमारे पिताजी उसे शॉर्ट हैण्ड में नोट करते थे, और उसको टाइप करके फिर किताब या अखबार के लिए तैयार कर देते थे।

इस प्रकार ऋषिकेश से उनका सम्पर्क और सम्बन्ध बढ़ा। एक दिन वे अपनी इस तीर्थयात्रा में माताजी को भी लेकर जाते हैं। इस यात्रा का प्रयोजन स्वामी शिवानन्द जी से मंत्र दीक्षा लेना था। लेकिन जब ये दोनों स्वामी शिवानन्द जी के पास पहुँचते हैं, तो धर्मशक्ति जी स्वामी शिवानन्द जी को नहीं, बल्कि उनके एक शिष्य को देखकर अपने आपको भूल जाती हैं। उस समय स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं कि चिन्ता नहीं करो, इसके गुरु इसके घर आकर इसको दीक्षा देंगे। और ऐसा हुआ भी।

राजनाँदगाँव में योग आन्दोलन

सन् 1956 में जब हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी ने स्वामी शिवानन्द जी का आदेश पाकर योग प्रचार हेतु ऋषिकेश छोड़ा और भारत का भ्रमण आरम्भ किया, तब सर्वप्रथम वे राजनाँदगाँव आए। हमारे पिताजी उस समय मिल में काम करते थे। हम लोग किसी समृद्ध परिवार से नहीं हैं। हमारा जन्म मिट्टी की झोपड़ी में हुआ। हमारे पिताजी बी.एन.सी. मिल में स्टेनो का काम करते थे। हमारे माता-पिता श्री स्वामीजी को अपने घर लाए, उसी मिट्टी की कुटिया में। वही मिट्टी की कुटिया, जो शायद 12 x 20 फुट से ज्यादा नहीं थी, अन्तर्राष्ट्रीय योग आन्दोलन का मुख्यालय बनी। इस योग आन्दोलन की जिम्मेदारी स्वामी सत्यव्रतानन्द जी और स्वामी धर्मशक्ति जी के कन्धों पर पड़ी।

जब श्री स्वामीजी ने उन्हें दीक्षा दी थी, तब अपने मन के उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा था, 'तुम मेरे सत्य के व्रत हो, इसलिए तुम्हारा नाम स्वामी सत्यव्रतानन्द पड़ेगा, और तुम मेरे धर्म की शक्ति हो, इसलिए तुम्हारा नाम स्वामी धर्मशक्ति पड़ेगा।' और उनकी वही वाणी आज यहाँ अम्माजी के तस्वीर के नीचे लिखी हुई है।

इस प्रकार राजनाँदगाँव में योग का मिशन आरम्भ होता है। हर काम में, हर जीवन में संघर्ष तो रहते ही हैं, उनके बारे में बोलने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि हर व्यक्ति संघर्ष से ही आगे बढ़ता है। संघर्ष ही मनुष्य के व्यक्तित्व को तराशता है। जैसे छेनी-हथौड़े से एक पत्थर में छिपी मूर्ति को बाहर निकाला जाता है, वैसे ही जीवन में संघर्ष मनुष्य की प्रतिभा और व्यक्तित्व को विकसित करता है।

समय बीतता गया, और योग का कार्यक्रम आगे बढ़ता गया। स्वामी धर्मशक्ति जी ने श्री स्वामीजी के योग-आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल की सचिव रहीं, योगा और योग-विद्या पत्रिका की सम्पादिका भी। और जब क्षेत्र-संन्यास लेकर हमारे गुरुजी रिखिया में साधना में संलग्न हुए और वहाँ पर संन्यासियों के प्रशिक्षण के लिए परमहंस अलखबाड़ा का निर्माण किया, तब इस अलखबाड़ा की प्रथम आचार्या के रूप में स्वामी धर्मशक्ति नियुक्त हुईं।

गुरु-भक्ति की मिसाल

स्वामी धर्मशक्ति की गुरु-भक्ति अद्वितीय रही है। इनके पिताजी ने जब स्वामीजी को देखा था, तो कहा था, 'बेटी, मैं तुम्हें तुम्हारे वास्तविक पिता को सुपुर्द करता हूँ। आज से यही तुम्हारे पिता हैं, मैं नहीं।' उस दिन से स्वामी धर्मशक्ति ने श्री स्वामी जी को अपना पिता माना, और उनकी पुत्री की तरह जीवन व्यतीत किया। एक ऐसा जीवन जो श्रद्धा, निष्ठा, समर्पण और प्रेम से युक्त था।

जो भी उनके पास आया, जो भी उनसे मिला, हमेशा एक सुखद संदेश, एक प्रेरणा को लेकर गया। उन्होंने हमेशा सभी में उत्साह, प्रसन्नता और सकारात्मक चिन्तनों

का प्रचार किया। बावन साल की अवधि में मैंने आज-तक उनके मुख से कोई दुर्वचन नहीं सुना। उन्हें कभी यह कहते नहीं सुना कि यह व्यक्ति ऐसा है, वह व्यक्ति गलत है या यह काम ठीक से नहीं किया। कहा करती थीं कि सब लोग अपनी क्षमता के अनुसार काम करते हैं। कोई चींटी है, तो कोई बंदर तो कोई हाथी। अगर हाथी कहे कि चींटी ठीक से काम नहीं कर रही है, तो हाथी की वह सोच गलत होगी। चींटी ने अपने स्तर पर ठीक काम किया है। इस तरह वे हमें बतलाती थीं कि किसी के ऊपर नाराज होने से कोई फायदा नहीं, क्योंकि सब अपने सामर्थ्य के अनुसार काम करते हैं। तुम उन्हें केवल प्रोत्साहित करो ताकि वे अपना काम अच्छे तरीके से सम्पन्न कर सकें, और अपने अच्छे काम से दूसरों को प्रेरित कर सकें। उनकी ऐसी शिक्षा रही।

गुरु पर उनका गजब का विश्वास था। सन् 1971 में जब स्वामी सत्यव्रतानन्द जी का देहावसान हुआ, तब अम्माजी ने स्वामी जी से कहा, 'आप तो आ गए इनके लिए, मेरा क्या होगा?' स्वामी जी ने उस समय कहा था कि मैं तुम्हारे लिए भी आऊँगा।

पिछले वर्ष जब हमने अम्माजी को बताया कि गुरु आज्ञा के अनुसार इस वर्ष हम पंचाग्नि साधना आरम्भ करने वाले हैं, तब उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा, 'गुरुजी ने तुम्हें जो भी बात कही है, उसे अवश्य पूरा करना, चाहे उसमें तुम्हारे प्राण ही क्यों न चले जाएँ।' और इस वर्ष हमने यहाँ पंचाग्नि साधना की। 11 फरवरी को हम अपनी पंचाग्नि साधना समाप्त करके उनके पास जाते हैं और कहते हैं कि आपके आशीर्वाद से हमने यह साधना पूरी कर ली और गुरुजी के निर्दिष्ट मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा कि मुझे इसी दिन का इंतजार था। शायद वे पंचाग्नि सम्पूर्ण होने की ही प्रतीक्षा कर रही थीं।

हमने उनसे आगे कहा कि कल से इस आश्रम का स्वर्ण जयन्ती कार्यक्रम आरम्भ होने वाला है। उन्होंने कहा कि इसके लिए भी मेरा आशीर्वाद तुम लोगों के साथ

है। मैं यही चाहती हूँ कि जैसे इस बार धूम-धाम से स्वर्ण जयन्ती मनायी जा रही है, वैसे ही पचास साल के बाद पुन: धूम-धाम से इसकी शतक जयन्ती मनायी जाएगी।

अंतिम क्षण

12 फरवरी को यहाँ स्वर्ण जयन्ती कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। उस दिन ग्यारह बजे से पौने बारह तक हम उनके साथ थे, उसके बाद कार्यक्रम के लिए हम आ गए। थोड़ी देर में हमें फोन आया कि ठीक 12 बजे, न एक सैकण्ड इधर, न एक सैकण्ड उधर, उन्होंने अपनी अन्तिम श्वास ली। पूर्ण विश्रांति के साथ, निश्चिन्त होकर उन्होंने अपना शरीर छोड़ा।

यहाँ आश्रम की परम्परा है कि हम लोग प्रतिदिन रात को अपने गुरुदेव के कमरे में उनका बिस्तर तैयार करते हैं। 12 तारीख को 12 बजे स्वामी धर्मशक्ति ने प्राण त्यागे, 12 तारीख की रात को बिस्तर बना, और 13 तारीख को सबेरे जब संन्यासी वहाँ पर बिस्तर उठाने के लिए जाते हैं, तो देखते हैं कि पूरा बिस्तर हिला हुआ है। मच्छरदानी उठी हुई है, रजाई बगल में पड़ी है, और बिस्तर पर नितम्ब से घुटनों तक का पूरा चिह्न स्पष्ट रूप से दिखलाई दिया, जैसे किसी ने वहाँ बैठकर ध्यान लगाया हो। उसी से हमलोगों को मालूम पड़ा कि गुरुजी ने जो वचन 1971 में दिया था कि मैं तुम्हें लेने आऊँगा, वह वचन पूरा किया है, और सचमुच उन्हें लेने आए हैं।

13 फरवरी को यहाँ अखाड़ा में उन्हें विधिवत् भू-समाधि दी गई, क्योंकि सिद्ध संन्यासियों को भू-समाधि देने का विधान है। रोड-छाप, अड़ियल-छाप संन्यासियों के लिए नहीं, बल्कि जो सन्त हैं, जिन्होंने अपनी श्रद्धा के बल पर गुरु और शिव तत्त्व को अपने भीतर जागृत कर लिया है, ऐसी महान् विभूतियों के लिए भू-समाधि

का प्रावधान है। तेरह तारीख को उन्हें भू-समाधि दी गई और तेरह भी क्या सुन्दर दिन! गुरु नानक जी के जीवन की एक सुन्दर घटना है। गुरु नानक दुकान में बैठकर अनाज बेचा करते थे। एक दिन उनके पास एक आदमी आया, कहा कि मुझे चावल चाहिए। गुरु नानक ने अपने हाथ में सूप लिया और चावल को उठाकर उसके बोरे में डालते गए, और गिनते गए 1, 2, 3... 12, फिर 13, 13, 13... और तेरह में ही अटक गए। उन्हें लगा यह सब तेरी ही चीज है, भगवान की ही चीज है। 'जो हरि से मिले सो हरि का होय'।

बुद्ध पूर्णिमा के दिन अम्माजी का जन्म हुआ था, और नवासी वर्ष की आयु में उन्होंने अपना शरीर छोड़ा। हम अपना बहुत सौभाग्य समझते हैं कि गुरुजी ने एक ऐसे सन्त और विदुषी महिला के गर्भ से जन्म लेने का अवसर दिया। इसलिए हम उन्हें अपनी माँ नहीं मानते, बल्कि देवी मानते हैं। ऐसी देवी जो हमेशा प्रेम और करुणा की शक्ति से दूसरों के जीवन में अभय-दान देती रहीं, दूसरों को संरक्षण देती रहीं। यह मेरा अपना व्यक्तिगत चिन्तन है कि मेरे जैसे धन्य शायद इस संसार में कुछ ही लोग होंगे, जिन्हें ऐसी माता प्राप्त हुई है, जिन्हें ऐसे गुरु प्राप्त हुए हैं, और जिन्हें ऐसा समाज प्राप्त हुआ है।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

हरि ॐ तत्सत् ।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

मेरे आराध्य

स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती

पृष्ठ 384, ISBN: 978-81-86336-88-5

'मेरे आराध्य' श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के जीवन के कुछ अद्‌भुत घटनाक्रमों का संकलन है। संतों का जीवन सदा से ही सामान्य जनों के लिए अजस्र प्रेरणा का स्रोत रहा है। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ऐसे अनोखे साधु व योगी हैं, जिन्होंने सिद्धियाँ प्राप्त कर वनान्त में समाधि नहीं लगायी, बल्कि अपनी योग-शक्ति का प्रयोग निरंतर जन-कल्याणार्थ करते रहे; और इस संसार सागर से निर्लिप्त ही रहे। जो भी श्री स्वामीजी के सम्पर्क में आया, उसका जीवन परिवर्तित हो गया, और वह सदा के लिए इनका होकर रह गया। आध्यात्मिक दृष्टि से इस 'गुरु गीता' की महत्ता उतनी ही है, जितनी प्राचीन पुराणों और शास्त्रों की।

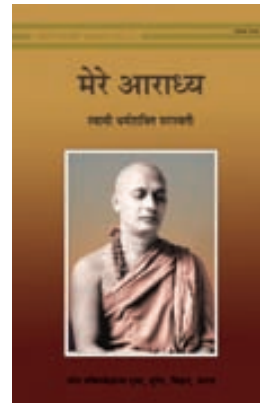

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603, 09304799615 फैक्स : 91-6344-220169

कृपया जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, जिसके बिना आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

सत्यानन्द योग वेबसाइट

SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, शिवानन्द मठ, सीता कल्याणम् महोत्सव तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.rikhiapeeth.net

इस वेबसाइट पर प्रतिदिन श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का विभिन्न आध्यात्मिक विषयों पर एक नया सत्संग उपलब्ध रहता है।

'यौगिक जीवन' स्वामी निरंजन के संग

www.biharyoga.net/living-yoga/ पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मिशन सम्बन्धी लेख, संदेश एवं समाचार उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका के लेखों के संग्रह तथा पूरे विश्व में सत्यानन्द योग केन्द्रों और शिक्षकों के सम्पर्क सूत्रों और गतिविधियों की जानकारी के लिए इस वेबसाइट को देखें।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India Under No. HR/FBD/298/13–15
- Registered with the Registrar of Newspapers, India Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

गंगादर्शन के सत्र एवं कार्यक्रम 2013

जून–अगस्त	योग विज्ञान एवं जीवनशैली सत्र
जून 1–4	बाल योग मित्र मण्डल का कार्यक्रम
जुलाई 18–21	गुरु पूर्णिमा आराधना
जुलाई 22	गुरु पादुका पूजन
सितम्बर 8	शिवानन्द जन्मोत्सव
सितम्बर 12	स्वामी सत्यानन्द संन्यास दिवस
अक्टूबर 23–27	स्वर्ण जयन्ती विश्व योग सम्मेलन
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक माह के पाँचवे और छठे दिवस	श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की महासमाधि का स्मरणोत्सव

महत्त्वपूर्ण सूचना

बिहार योग विद्यालय की आगामी स्वर्ण जयन्ती एवं 23 से 27 अक्टूबर, 2013 तक आयोजित विश्व योग सम्मेलन के कारण गंगा दर्शन, मुंगेर में संचालित अधिकांश सत्र वर्ष 2013 में स्थगित रहेंगे। निम्नलिखित सत्रों का संचालन रिखियापीठ में किया जाएगा–

जून 20 – जुलाई 10	योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र (हिन्दी)
अगस्त 1 – 15	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र – मधुमेह (हिन्दी)

उपर्युक्त सत्रों के सन्दर्भ में अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें–

रिखियापीठ, पोस्ट-रिखिया, जिला-देवघर, झारखण्ड, भारत, 814113
फोन नम्बर : 06432-290870 / 09304-488889 / 09204-080006
ई-मेल : rikhiapeeth@gmail.com वेबसाइट : www.rikhiapeeth.net

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें–

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603, 9304799615 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।